हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पुस्तकालय
इलाहाबाद

वर्ग संख्या .... ८९१.३ ....

पुस्तक संख्या .... [illegible] ....

क्रम संख्या .... [illegible] ....

नीम की निबौलियाँ

डा० [illegible] संग्रह

गुरुबचन सिंह

Gur-Bachan Singh.
23 N ROAD.
JAMSHEDPUR-1

प्रकाशक

नई दिशा प्रकाशन

जमशेदपुर—१

प्रकाशक
अमरजीत सिंह,
नई दिशा प्रकाशन,
जमशेदपुर–१

प्रूफ संशोधक
रतन सिंह, प्रभाकर

स्थानीय विक्रेता
गुप्ता स्टोर्स.
धनकी डीह,
जमशेदपुर



फौजा सिंह बुकसेलर,
विष्टूपुर, जमशेदपुर

प्रथम संस्करण
१९५८, सितम्बर

मूल्य- दो रुपये पच्चीस नये पैसे

मुद्रक
मोहनलाल बिश्नोई, बी. ए.
मोहन प्रेस, कदमकुआँ,
पटना–३

लेखक की अन्य पुस्तकें:—

1. रेखाएँ
2. मिट्टी का मोह
3. युग और देवता

जिज्ञासा

नीम की निबौलियाँ में जो कहानियाँ हैं वे कुछ कड़वी भी हैं और मीठी भी, और हमारे सामाजिक जीवन के लगभग प्रत्येक अंग पर प्रकाश डालती हैं।

मुझे उस समाज से कोई मोह नहीं, जो एक लाचार मनुष्य को, मनुष्य न रहने दे कर, पशु से भी बदतर बना देता है। मेरे लिए उन आदर्शों का कोई महत्त्व नहीं, जो सैद्धांतिक रूप में तो सुन्दर लगते हैं, लेकिन जिनका व्यावहारिक रूप गिरगिट की तरह रंग बदलता रहता है। मुझे वह कुछ भी अच्छा नहीं लगता, जिसमें जन-जीवन का कल्याण नहीं, जो मनुष्य के जीवन और विचार को ऊँचा नहीं ले जाता! मैं तो सत्य का उपासक हूँ। और यदि मेरे विचारों की यही प्रतिध्वनि, पाठकों को इन कहानियों में मिले तो मैं समझूंगा मेरा यह छोटा सा प्रयास सफल रहा!

ता० १–६–५८
२३–एन. रोड
बिष्टूपुर

गुरुबचन सिंह

१

२

३

४

५

६

७

८

९

१०

सूची

पुराना आदमी

उस दिन एक लम्बे अर्से के बाद गांगुली बाबू ने अपना वह कोट निकाला, जो तह करके पेटी में रख दिया गया था। पेटी में रखे-रखे उसमें शिकनें पड़ गयी थीं। वह कोट उन्होंने पन्द्रह वर्ष पहले, जब वह हरिद्वार की यात्रा पर गये थे, बीस रुपये में बना-बनाया खरीदा था। उस कोट में वह कई सर्दियाँ काट चुके थे। सर्दियों के दिनों में वह कोट हमेशा उनके तन पर रहता था। जब जाड़े बीत जाते, तो उसे तह करके पेटी में रख दिया जाता।

हमेशा की तरह पिछली सर्दियों के खत्म होने पर उन्होंने वह कोट धुलवाकर पेटी में रख दिया था। लेकिन इन सर्दियों के आने से पहले ही उन्हें दफ्तर से अवकाश प्राप्त हो गया था। इसलिए वह कोट, जो जाड़े के दिनों में दफ्तर जाने के समय उनके शरीर पर होता, पेटी से निकाला ही नहीं गया था, जैसे अब उन्हें उसकी आवश्यकता ही न पड़ी हो। किन्तु उस दिन उन्हें अपनी बिदाई की पार्टी में सम्मिलित होना था, इसलिए दफ्तर जाने से पहले वह अपना पुराना कोट पहने बिना न रह सके।

पहले हमेशा जब वह इसी प्रकार दफ्तर जाने के लिए तैयार बैठे रहते, श्रीमती गांगुली उन्हें पान का बीड़ा लाकर थमाती, और उनका पोता आकर उनकी टाँगों से लिपट जाता और अपनी कोमल, मधुर भाषा में उन्हें उनका वादा याद दिलाते हुए कहता, बाबा, मेरे लिए मिठाई लाना न भूलना। और वह प्यार से बच्चे

का मुँह चूमकर, मुस्कराकर कहते, हाँ-हाँ, बेटा, जरूर मिठाई लाऊँगा। और वह अपने काम पर चले जाते।

उस दिन भी वह दफ्तर जाने की तैयारी में बैठे हुए थे। श्रीमती गांगूली हमेशा की तरह उनके लिए पान का बीड़ा बनाकर लायीं और एक तश्तरी में उनके सामने रख दिया। उन्होंने एक नजर उस पान के बीड़े की तरफ देखा, और फिर देखते ही रह गये। फिर उनकी नजरें कमरे में चारों ओर घूम गयीं कि कहीं से नटखट गोपाल निकल आये और उनके पैरों से लिपट जाय, वादा याद दिलाये और जिद करे। आज वह जीवन में अन्तिम बार दफ्तर जा रहे हैं, आज वह उससे बहुत बड़ा वादा करेंगे, उसके लिए बहुत-सारी मिठाइयाँ लायेंगे।... किन्तु उनकी नजरें चारों ओर भटककर रह गयीं। गोपाल कहीं भी नजर नहीं आया, न कहीं से उसके रोने-चिल्लाने की आवाज ही आती सुनायी दी। श्रीमती गांगूली ने टोका, तो अचानक उन्हें ख्याल आया, मैं भी कितना बड़ा बेवकूफ हूँ ! जिस गोपाल को आँखें यहाँ ढूँढ रही हैं, वह तो अपने बाप के साथ अलग रहता है। काश, वह यहीं होता ! काश, उनका बेटा अलग न होता, बहू यहीं रहती, गोपाल यहीं रहता, गोपाल का बाप यहीं रहता, यह घर वीरान न होता !.

उन्होंने अपनी जेब घड़ी में समय देखा, सवा चार बज रहे थे। पाँच बजे तक उन्हें दफ्तर में पहुँच जाना चाहिए, क्योंकि उन्हें बिदाई की पार्टी ठीक पाँच बजे दी जानेवाली थी।

वह जाने के लिए उठ खड़े हुए। तभी श्रीमती गांगूली उनसे बोलीं—अजी, क्या आज यह पुराना कोट पहनकर जाना आपके लिए जरूरी है ?

—क्यों ?—उनके मुँह से निकला और उन्होंने एक नजर अपने कोट पर डाली। फिर बोले—क्या तुम्हें यह कोट अच्छा

नहीं लगता ? यह तो वही पुराना कोट है, जिसे मैं हमेशा सर्दियों में पहनकर दफ्तर जाया करता था।

—अब यह बहुत पुराना हो गया है ।

—मैं भी तो अब बहुत पुराना हो गया हूँ।...क्या नया कोट पहन लेने से मैं नया आदमी बन जाऊँगा?— और वह जाने कैसी हँसी हँस पड़े ।

—नहीं, मैं यह नहीं कहती।... आज आप काम पर थोड़े ही जा रहे हैं, आप तो पार्टी में जा रहे हैं। क्या यह जरूरी है कि आप उसी पुराने कोट में जायँ ? वही पुराना कोट और वही पुरानी छतरी ! भला सन्ध्या के समय भी कोई छतरी लेकर चलता है और अभी सर्दी भी कहाँ शुरू हुई है ! इस कोट और छतरी के बिना क्या लोग आपको पहचानने में भूल कर बैठेंगे ?

गांगुली बाबू हँसे । शान्तिपूर्वक बोले—हाँ, भाई, यह भी हो सकता है । अगर अपनी पुरानी वेश-भूषा में नहीं गया, तो सम्भव है, मेरे साथी मुझे पहचानने में भूल कर बैठें । किरानी बनकर कभी दफ्तर में गया था, और किरानी ही रहकर आज वहाँ से निकल रहा हूँ । जो पहले था, सो अब भी हूँ। ऐसे पहनावे में जाने में कोई मानहानि की बात नहीं । मैं तो पहचाना ही इन्हीं कपड़ों में जाता हूँ !

इतना कहकर वह धीरे-धीरे घर से बाहर निकल आये, गृहिणी पीछे-पीछे आयी और द्वार के निकट खड़ी हो उन्हें जाते देखती रही ।

जब वह दफ्तर में पहुँचे, तो उनके साथियों ने उन्हें बड़े आदर और श्रद्धा से लिया । उन्होंने उनको चारों ओर से घेर लिया और सर-समाचार पूछने लगे । गांगुली बाबू ने अपने आपको

फिर उसी वातावरण में पाया, जहाँ से अलग होने के बाद उनकी हालत किसी ऐसे राजनीतिक कैदी-जैसी हो गयी थी, जिसे उसके साथियों से विलग कर किसी एकान्त कोठरी में डाल दिया गया हो। इसलिए वह भी उनसे मिलकर बहुत खुश हुए।....

ज़रा देर बाद बड़े साहब भी आ गये। वही विदाई पार्टी के सभापति थे।

सभा की कार्रवाई आरम्भ हुई। गांगूली बाबू को एक मान पत्र भेंट किया जा रहा था। मान-पत्र उनके एक पुराने मित्र पढ़ रहे थे। उस पत्र में उनका संक्षिप्त परिचय था और उन कामों की चर्चा थी, जो उन्होंने अपनी चालीस वर्ष की नौकरी में वहाँ अंजाम दिये थे। उस पत्र में उनके उस सरल स्वभाव, सचाई, सहयोग और मित्रता का वर्णन था, जिसके नाते वह सबके दिलों में जगह बना चुके थे। वह बड़े ही भले आदमी कहलाते थे। अपनी चालीस वर्ष की नौकरी में वह कभी अपने किसी साथी से नहीं झगड़े थे, कभी किसी के खिलाफ उन्होंने कोई शिकायत नहीं की थी। वह हमेशा अपने साथियों की हर तरह से मदद करते थे। उन्होंने जैसे अपने आपको एक अच्छा आदमी बनाने का प्रयत्न किया था, वैसे ही अपने साथियों के बीच भी एक हमदर्दी का वातावरण पैदा कर दिया था। वह जब क्लर्क बनकर उस दफ्तर में आये थे, एक बड़े ही गरीब और तङ्गहाल आदमी थे। दिन-भर काम करते थे और अफ़सरों की झिड़कियाँ सुना करते थे। वह उन दिनों के कटु अनुभव अपने मन से कभी नहीं भुला पाये थे।

इसी बीच जब उनकी शादी हुई थी, घर की चिन्ता बढ़ गयी थी। गृहस्थ जीवन के झंझटों ने उन्हें दिन-रात परेशान कर रखा था। तब भी दफ्तर को उन्होंने सबके ऊपर रखा जैसे दफ्तर उनके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग हो।

उनके सहयोगी नाम-पत्र में उनकी बड़ी तारीफ़ कर रहे थे, उनकी सचाई, साहस और सरलता की प्रशंसा कर रहे थे। गांगुली बाबू सब-कुछ सुन रहे थे। उनका माथा झुका हुआ था, और मित्र के मुख से निकले प्रशंसा के शब्द उनके कानों में करुण संगीत की तरह गूँज रहे थे।

उन्हें याद है। एक बार एक साहब ने उन्हें 'नानसेंस' कह दिया था, तो वह गुस्से में फाइलें मेज पर पटककर साहब से अपने शब्द वापस लेने के लिए उसके स्वरों से भी अधिक तेज स्वर में चीखने लगे थे। सारे दफ्तर में एक हंगामा-सा मच गया था। और आखिर साहब को 'सारी' कहकर अपने शब्द वापस लेने ही पड़े थे। उस समय गांगुली बाबू ने सोचा था, मनुष्य परिस्थितियों में घिरकर कभी पराजय मान लेता है, किन्तु जब उसका आत्माभिमान उसे उकसाता है, तो वह गुलामी के वातावरण के होते हुए भी विद्रोह कर बैठता है। जिस मनुष्य में विद्रोह का कुछ भी अंश नहीं, वह कायर है, जीना उसके लिए निरर्थक है।

उनके मित्र उनके बारे में बहुत-कुछ कहते जा रहे थे। सुन-सुनकर गांगुली बाबू को कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे वह एक बहुत बड़े आदमी हैं और दफ्तर के वह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। अब उनके वहाँ से चले जाने के बाद उन जैसा कोई दूसरा आदमी नहीं रह गया है, जो दफ्तर में अपना सर ऊँचा करके बैठ सके। उन्होंने एक नजर अपने सभी साथियों की ओर देखा और मन-ही-मन सोचने लगे, उनमें और मुझमें क्या अन्तर है?... कुछ भी तो नहीं। मैं उम्र-भर किरानी रहा हूँ और आज एक किरानी से भी गया-गुज़रा हूँ। तब मैं बड़ा कैसे बन गया? वह सोचने लगे, क्या एक मेरे न होने से दफ्तर का काम रुक गया है? नहीं, वही दफ्तर है और कर्मचारी

भी वही । काम भी सलीके से चल रहा है । इसलिए मेरे होने या न होने मे कुछ फर्क नही पड़ता । न तो मै पहले कभी बड़ा आदमी था और न अब हूँ, और न कभी बन सकूँगा । मुझ मे कोई ऐसी खूबी नही है, जो मुझे बड़ा बना दे । साठ वर्ष का बूढ़ा हो चुका हूँ । चालीस वर्ष इसी दफ्तर मे बिताये है । जिन्दगी मे कोई बडा काम नहीं किया । आज मुझे मेरे साथियों ने आमंत्रित किया है । आज इनका स्नेह मुझे यहाँ बाँध लाया है । यह जो मेरी प्रशंसा कर रहे है, यह तो इन्हीं की बड़ाई है, इन्ही के मन की श्रद्धा है । इन्हीं की दृष्टि ऊँची है, जो मुझे मच पर बैठाकर मुझे श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे है ।

जब मान-पत्र का पढ़ना समाप्त हुआ, तो बड़े साहब कुर्सी पर से उठ खड़े हुए । उन्होंने गांगूली बाबू की प्रशंसा करते हुए सबको यह बताया कि वह कितने सीधे और मन लगाकर काम करनेवाले व्यक्ति थे । वह फर्म के एक बहुत पुराने और अच्छे सेवक थे । दफ्तर का सारा स्टाफ उनकी अनुपस्थिति सदा अनुभव करता रहेगा । उनके प्रति सारा स्टाफ श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए भगवान से उनके स्वास्थ्य के लिए कामना और दीर्घजीवी होने की प्रार्थना करता है ।

साहब ने अन्त मे उन्हे एक जेब-घड़ी भेंट की और कहा—यह एक छोटी-सी भेंट मै स्टाफ की ओर से इन्हें भेंट करता हूँ । आशा है इसे स्वीकार कर गांगूली बाबू हमे अनुगृहीत करेंगे और इसके निमित्त हम सबको बराबर याद करते रहेंगे ।

गांगूली बाबू ने वह घड़ी अपने दोनो हाथों मे ले ली । सारे साथियों ने जोर से तालियाँ बजायी । साहब बैठ गये और गांगूली बाबू धन्यवाद के रूप में दो शब्द कहने के लिए खड़े रह गये ।

एक बार उन्होंने अपने सभी साथियों की ओर देखा और सोचने लगे कि क्या बोलूँ ?.. ये दोस्त, मित्र और साथी, कल मैं उनमें एक था और आज मैं नहीं रहूँगा । यह ज़िन्दगी कितनी अजीब है ! इसमें न जाने कितने अलग-अलग रास्तों पर चलना पड़ता है । इसकी मंज़िल का कोई पता नहीं । ....मैं अपने साथियों से क्या बोलूँ ?

सभी साथी उनके मुँह की ओर देख रहे थे, देखते रहे, और फिर उन्होंने देखा, गांगुली बाबू की आँखों में टप-टप आँसू झड़ रहे हैं...

गांगुली बाबू मुँह से कुछ नहीं बोले, और वह दोनों हाथों से सबको प्रणाम करते हुए कुर्सी पर बैठ गये ।

उनके साथी शायद गांगुली बाबू की आँखों की भाषा समझ गये थे, क्योंकि उनकी आँखों में भी आँसू भर आये थे !



ओस पीनेवाले

उस दिन जब वह चहलक़दमी के लिए घर से बाहर निकला, वह प्रौढ़ व्यक्ति भी उसके साथ था, और चुप-चाप माथा झुकाये उसके साथ-साथ चल रहा था, ठीक उसी प्रकार जैसे लोग प्राय जनाजे के साथ-साथ चला करते हैं। वे शाल और पीपल के पेड़ों की छाया-तले से होते हुए, हरी-हरी घास से भरे, एक चौड़े-से मैदान में होकर एक साँप-जैसी रेंगती हुई पगडंडी पर चलकर सामने एक झील की ओर बढ़ रहे थे। और जब झील एक फर्लाङ्ग की दूरी पर रह गयी थी, तब वह प्रौढ़ व्यक्ति उससे बोला—भाई, कहीं मैं आपके साथ चलता हुआ, आपके एकान्त में बाधा तो नहीं डाल रहा ?

उसने कहा—बिल्कुल नहीं।

—धन्यवाद,—प्रौढ़ व्यक्ति के मुँह से निकला और वे आगे बढ़ने लगे।

—यों तो मैं एकान्तप्रिय हूँ,—वह बोला—लेकिन जब आप-जैसे व्यक्ति साथ हों, तो मुझे बातों में बड़ा आनन्द मिलता है, खास कर ऐसी उदास सन्ध्या में, जब कि हवा के झोंकों से काँपनेवाले पेड़ों के पत्ते भी सिहर रहे हों। और —ऊपर नभ की ओर देखता हुआ वह बोला—आकाश में तैरते हुए बादलों के टुकड़े अपनी निश्चित गति भूल बैठे हों,—उसने एक गहरी साँस ली —यह रसहीन जीवन भी सफ़ेद बादल जैसा ही है, जिसकी पलकों में एक भी आँसू नहीं।

प्रौढ़ व्यक्ति बोला—मिस्टर अनूप, आपकी बातों में बड़ी संवेदना है। शायद आप अपनी इस जिन्दगी से ऊब चुके हैं। लेकिन आपके लिए निराश होना अच्छा नहीं...

वह बोला—मेरी जिन्दगी से मतलब शायद आप मेरा रोग-ग्रस्त जीवन लेते हैं। लेकिन मैं यह बात केवल अपने लिए ही नहीं कह रहा। मैं तो सारी जिन्दगी के लिए ही ऐसा कह रहा हूँ। उसकी दृष्टि प्रौढ़ व्यक्ति के चेहरे पर गड़ गयी और फिर जैसे वह उससे प्रश्न करता हुआ बोला—आप ही कहिए, आप जीवन को क्या कहिएगा ?...क्या भरा हुआ बादल, जिसमें बरसनेवाली जल की बूँदें, जलाकर राख कर देनेवाली बिजली और गिरनेवाले ओले भी हों...

—मैं जीवन के बारे में इतना अधिक सोचने का आदी नहीं,—प्रौढ़-व्यक्ति उसका प्रश्न टालते हुए उससे पूछ बैठा—हाँ, मिस्टर अनूप, आप यह तो कहिए, आप यहाँ कितने दिनों से हैं ?

दबे स्वरों में उसने उत्तर दिया—एक साल से।

—एक वर्ष यहाँ रहकर आपने न जाने कितनी बदलती हुई जिन्दगियों को देखा होगा,—प्रौढ़ व्यक्ति बोला—आप जीवन के बारे में मुझसे कुछ अधिक सोच सकते हैं। इसलिए मैं भी आपकी इस राय से सहमत हूँ। हमारा जीवन शून्य आकाश में भटकते हुए सूखे बादलों-जैसा है, जिनकी आँखों से एक आँसू भी नहीं झड़ता।

—मिस्टर कपूर,—वह बोला—ये गोपीनाथ, हमारे डाक्टर जिनके यहाँ मेरी और आपकी भेंट हुई थी, क्या आपके मित्र हैं ? या केवल ..

—नहीं, केवल मित्र ही हैं—प्रौढ़ व्यक्ति बीच ही में बोल उठा—वह मेरे एक पुराने मित्र हैं और मैं एक लम्बे अरसे के बाद उनसे मिलने के लिए आया हूँ।

—खूब !—वह मुस्कराता हुआ उसके चेहरे की ओर देखता हुआ बोला—मित्रता की भावना आपको यहाँ रोगियों की इस दुनिया में खींच लायी।

प्रौढ़ व्यक्ति ने एक दीर्घ श्वास छोड़ा—हाँ !

वे दोनों घास के मैदान को पार करते हुए लेक के किनारे पहुँच गये । फिर वे एक बड़ी-सी शिला पर बैठ गये । वहाँ का वातावरण शान्त प्रतीत होता था । हवा में सरसराते हुए पत्तों की गुपचुप बड़ी रहस्यमयी जान पड़ती थी । हल्की-हल्की लहरों के रूप में किनारों से टकरानेवाला लेक का पानी, छप-छप, एक क्षीण स्वर पैदा कर रहा था । कुछ मुरगाबियों और बगुलों के जोड़े अपने पर फैलाये लेक के एक छोर से उड़कर दूसरे छोर की ओर जाते दिखायी दे रहे थे । सामने पर्वत के पार क्षितिज की लालिमा बादलों के नीचे पश्चिम में दूर तक फैल गयी थी, और धीरे-धीरे घने पेड़ों की शाखाओं में आश्रय लेनेवाले पक्षियों का शोर बढ़ने लगा था ।

उसने उस प्रौढ़ व्यक्ति से कहा—मुझे याद आ रहा है, मैं पहले भी कभी एक बार आपको डाक्टर साहब के साथ देख चुका हूँ ।

—हाँ, मुझे भी याद है,—प्रौढ़ व्यक्ति बोला —और शायद हमारा हलका-सा परिचय भी हुआ था । फिर भी आप मुझे पहचान न सके, वाह !—वह हँस दिया ।

वह कुछ दुखित शब्दों में बोला—रोग के कारण मेरी स्मरण-शक्ति बहुत क्षीण पड़ चुकी है ।

—डाक्टर से मैंने आपके बारे में पूछा था —प्रौढ़ व्यक्ति धीरे से बोला —आप कुछ महीने पहले काफी इम्प्रूव कर गये थे । किन्तु फिर एकाएक आप का टेम्परेचर हाई रहने लगा और आप का वेट भी कम हो गया । उन्होंने मुझे आपके बारे में कुछ बातें और भी बतायी थीं, जिन्हें मैं दुहराना नहीं चाहता, किन्तु उनके बारे में मैं आप ही के मुँह से कुछ सुनना चाहता हूँ ।—पीछे की ओर

मुँह घुमा, हाथ से संकेत करता हुआ बोला—क्या सचमुच आपको दक्षिण की ओर, उस पीले रङ्ग के बंगले में रहनेवाली एक रोगिणी के यहाँ से चले जाने का बहुत दुख हुआ था ?

उसने प्रौढ व्यक्ति की ओर गौर से देखा—आप यह जान कर क्या करेंगे ?

—केवल मित्र के नाते मैं यह बात पूछ रहा हूँ। प्रौढ़ व्यक्ति के चेहरे पर सरलता के भाव थे—यदि मैं आप से यह कह दूँ कि मुझे आप से सहानुभूति है, स्नेह है, तो शायद आप इसे मेरा दिखावा नहीं समझेंगे।..आप मुझे अपना मित्र ही समझिए।

—हाँ, आप मेरे मित्र हैं—वह व्यथित स्वरों में बोला—और यदि मैं आपके प्रश्न के उत्तर में हाँ कह दूँ, तो इस स्वर की प्रतिध्वनि रह-रहकर मेरे ही कानों में गूँजती रहेगी। किन्तु आपको मेरी इस हाँ पर विश्वास नहीं होगा।

—नहीं, मुझे आपके प्रत्येक शब्द पर पूर्ण विश्वास है,—प्रौढ़ व्यक्ति ने दूसरा प्रश्न किया—वह रोगिणी थी कौन ?

—यह तो अब मै विश्वास के साथ नही कह सकता कि वह कौन थी,—वह सुदूर, एक-दूसरे का पीछा करने वाले दो पक्षियों को देखने लगा। कुछ क्षण चुप रहा और फिर बोला—पहली बार मैंने उसे उसके अपने बंगले के बरामदे में एक कुर्सी पर अकेले बैठे देखा था। उसके सुन्दर चेहरे पर छायी हुई उदासी देखकर मुझे उसपर बड़ी दया आयी थी। डाक्टर गोपीनाथ के मुँह से यह सुनकर बड़ा दुख हुआ था कि वह क्षय रोग से पीड़ित है। मैं अपने घर से निकलकर रोज उस बँगले के सामने से होता हुआ. इसी लेक के किनारे टहलने के लिए आया करता था। एक दिन सन्ध्या के समय, मैंने उसे भी यहीं टहलते हुए देखा। लौटने के समय जब कुछ

अँधेरा छा चुका था, मैं उसके साथ हो लिया, और यही हमारा पहला परिचय था। इस भेंट ही में हम लोगों ने एक दूसरे को अपने विषय में काफी कुछ कह दिया था। मैंने जाना, वह एक शिक्षित, साहित्य और कला में प्रेम रखनेवाली देवी थी।

—ऐसा अनुभव होता है, जैसे आप अति शीघ्र उसके निकट हो गये थे,—प्रौढ़ व्यक्ति बड़े गौर से उसके चेहरे की ओर देख रहा था।

वह बोला—हाँ, बड़ी करुणा थी उसकी बातों में। उसकी बातों में उसके विषादपूर्ण जीवन की झलक मिलती थी। एक शून्यता सदैव उसकी आँखों में झाँकती रहती थी।

और प्रौढ़ व्यक्ति ने शंका प्रकट करते हुए कहा— वह शायद अपने रोगग्रस्त जीवन से ऊबी हुई थी ?

इसके उत्तर में वह बोला—कोई अपने जीवन को कैसा समझता और देखता है, उससे उसकी कितनी दिलचस्पी रहती है, इसे हम केवल अनुमान ही से नहीं समझ सकते ! हाँ, वह अपने विगत जीवन से अवश्य ही ऊबी हुई थी, और एक नये जीवन के सपने देखती थी।

—लेकिन शायद उसके वे सपने पूरे नहीं हो सके,— प्रौढ़ व्यक्ति की नजरें तैरती हुई कुछ मुरगाबियों पर गड़ गयी।

—सपने,—पास खड़े एक पौधे के पत्ते नोचता हुआ वह बोला—मनुष्य का अतीत, वर्त्तमान और भविष्य ...सभी कुछ तो एक सपना है। मनुष्य की इच्छाएँ सदैव अपूर्ण रहती हैं, और इसी प्रकार सपने भी अधूरे रहते हैं।

प्रौढ़ व्यक्ति ने कहा—आपकी इन बातों के पीछे शायद कोई रहस्यमय कहानी हो, जिसकी तह तक मैं नहीं पहुँच सका।

—हाँ, यह सब-कुछ एक कहानी है,—वह गहरी साँस लेता हुआ बोला—वह बिल्कुल भोली और अभागी लड़की थी, जो मुस्कराते

हुए भी डरती थी। एक दिन मैंने उसका हाथ पकड़ कर उसे यहीं, इसी शिला पर कहा था, तुम्हें अपने जीवन से निराश नहीं होना चाहिए। तुम्हें जीवित रहना है और जीकर बहुत कुछ करना है। तुम एक महान् कलाकार बनोगी और सदा अमर रहोगी। तुम अति शीघ्र स्वस्थ होकर अपने घर लौट जाओगी। तुम्हें सदैव शुभेच्छाओं को अपने मन में स्थान देना चाहिए। और वह दबे-दबे स्वरों में बोली थी, मैं जीवित रहना नहीं चाहती। मुझे जीने की कोई इच्छा नहीं। मैं स्वस्थ होकर फिर घर लौटना नहीं चाहती। जितने दिन भी जिन्दगी है, मैं यहीं, इसी पहाड़ पर रहना चाहती हूँ। इन्हीं पीपल और शाल के पेड़ों की घनी छाँव-तले बैठना चाहती हूँ। इसी लेक के किनारे बसनेवाले छोटे-से कस्बे में रहना चाहती हूँ..

—लेकिन, लेकिन उसकी यह इच्छा पूरी नहीं हुई, ऐसा शक होता है.—प्रौढ़ व्यक्ति ने कुछ संकोच से कहा—वह आपको अपना समझने लगी थी।

—मुझे याद है,—वह कहने लगा—उन दिनों डाक्टर ने मुझसे कहा था, अनूप, तुम आश्चर्यजनक गति से इम्प्रूव कर रहे हो। तुम जल्दी ही रिकवर होकर यहाँ से छुट्टी पा जाओगे। मैंने कहा था, डाक्टर साहब, मैं एक गरीब आदमी हूँ। मेरे पास रुपया नहीं है। मेरे लिए अब यहाँ रह सकना सम्भव नहीं। मुझ में अब और यहाँ रहकर अपना खर्च चला लेने की शक्ति नहीं है। मैं अब यहाँ से शीघ्र ही चला जाना चाहता हूँ। हाँ, यह तो बताइए, कमला किस गति से इम्प्रूव कर रही है? डाक्टर ने कहा था, वह भी जल्दी ही ठीक हो जायगी। और हाँ, देखो, वह कुछ रुककर झिझकते हुए-से बोले थे, तुम उसके बारे में अधिक न सोचा करो। मैं उनकी यह बात सुनकर हँस दिया था। और फिर उसी दिन सन्ध्या के समय मैं इसी झील के किनारे कमला से मिला था। मैं उसे यह शुभ समाचार

सुनाते हुए बोला था, कमला, डाक्टर गोपीनाथ कहते थे, मैं तीव्र गति से इम्प्रूव कर रहा हूँ। मैं बहुत जल्दी अच्छा हो जाऊँगा.. और.. और जब मैं कुछ भी अच्छा हो गया, तब यहाँ से चला जाऊँगा। मेरी आर्थिक दशा मुझे और अधिक यहाँ रहने की आज्ञा नहीं देती। मैं अपनी एक गरीब माँ के लिए बोझ बन गया हूँ। वह बेचारी एक स्कूल में मिस्ट्रेस है, जो अपना पेट काटकर सौ-सवा सौ रुपये हर महीने मुझे यहाँ भेज दिया करती है। मैं अब उसके पास चला जाऊँगा। और सुनो, तुम भी इम्प्रूव कर रही हो, तुम भी बहुत जल्द अच्छी हो जाओगी। और उस समय उसका चेहरा सूर्य-मुखी की तरह खिल उठा था। वह कुछ क्षण मुस्कराती रही थी, और फिर धीरे-धीरे उसके उसी चेहरे पर चिता की राख में बुझती हुई चिगारियों जैसी म्लानता छा गयी थी।

—वह क्यों ?—प्रौढ व्यक्ति ने प्रश्न किया।

उसने गौर से उसके चेहरे की ओर देखा और फिर मन-ही-मन बोला, 'शायद इस व्यक्ति ने अपने बाल धूप में सफेद नहीं किये, और फिर वह ऊँचे स्वर में कहने लगा—मेरी बातो का उस गरीब लडकी पर बडा सुन्दर प्रभाव पड़ा था।

प्रौढ़ व्यक्ति ने पूछा—क्या वह लड़की गरीब थी ?

—नहीं, गरीब तो नहीं थी,—वह विश्वासपूर्ण शब्दों में बोला—किसी गरीब के बस की यह बात नहीं कि वह एक बेहतरीन मकान भाड़े पर ले और फिर नौकर-चाकर रखे। वह विचित्र स्वभाव की लड़की थी। उसने डाक्टर से मुझसे फीस और दवाओं का खर्च न लेने की ताकीद कर दी थी। वह बड़ी उदार थी, और उसके मन में मेरे प्रति बड़ी करुणा थी।

उसे तुमसे स्नेह था, प्यार था,—प्रौढ व्यक्ति धीरे से बोला।

—ये शब्द तो मेरे लिए अर्थहीन हैं—उसके शब्दों में निराशा थी। वह मुँह घुमाकर झील की ओर देखने लगा, उसके हिलोरे लेते हुए जल को। कभी कुछ मछलियाँ सतह पर उभरकर फिर जल में विलुप्त हो जाती थीं! उनके बीच बिल्कुल खामोशी-सी छा गयी थी। लेकिन पेड़ के पत्ते हवा में सरसराते हुए निरन्तर एक शोर-सा पैदा कर रहे थे। प्रौढ़ व्यक्ति की बात ने शायद उसे बहुत-कुछ सोचने के लिए मजबूर कर दिया था। वह माथा झुकाये झील के जल को देखता रहा। फिर कुछ देर बाद उसने अपना चेहरा घुमाया और बोला— मिस्टर कपूर, यदि मैं आपकी बात सच मान लूँ, तो मेरे मस्तिष्क से संदेह की एक कालिमा दूर नहीं होती। यदि उसे मुझसे सचमुच स्नेह था, यदि वह मुझे प्यार करती थी, या इसी प्रकार उसका मुझसे कोई और लगाव था, तो अचानक एक दिन उसे मेरी एक बात बुरी क्यों लग गयी थी? मैंने उससे केवल इतना ही कहा था, कमल, यदि हम पूर्णतः स्वस्थ हो गये, और यहाँ से वापस अपने घर लौट गये, तो क्या फिर हमारा कभी मिलन हो सकेगा? फिर हम इसी प्रकार बैठे मीठी बातों से मन बहला सकेंगे? क्या वहाँ भी कोई ऐसी ही झील होगी, जिसके किनारे हम तैरती हुई मुरगाबियों को देखकर आनन्द मना सकेंगे? क्या वहाँ भी शाल के ऊँचे-ऊँचे पेड़ होंगे, जिनकी शाखाओं पर झूलती हुई सुकुमार चिड़ियों की चहक सुनकर हम इस स्थान की बीती सन्ध्याओं को स्मरण कर सकेंगे? क्या ऐसा अवसर फिर हमें कभी मिलेगा, जब कि हम यह सोच सकें, मछली जल में बसती है और कमल कीचड़ में खिलता है?...बस, इतनी ही सी बात से उसके चेहरे पर सन्ध्या की-सी उदासी छा गयी थी। उसकी नजरें नीचे झुक गयी थीं। वह कुछ कहना चाहती थी, लेकिन उसके ओंठ फड़फड़ाकर रह गये थे। और मैं अपनी धुन में कहता गया था,

मैं जानता हूँ, कमला, तुम एक धनी घर की लड़की हो, पैसेवाली हो, और मैं..मैं..'चुप हो जाओ, भगवान के लिए चुप हो जाओ!' वह बीच ही में बोल उठी थी, मैं- मैं..और कुछ नहीं सुन सकती!.. और वह दोनों हाथों से अपना चेहरा छुपा सिसकियाँ भरने लगी थी। मैं उसके रोने का कुछ भी कारण नहीं समझ सका था। और अवाक् उसकी ओर देखता रह गया था। मैं अपने आप मे लज्जित था। कुछ देर बाद जब उसकी आँखो के आँसू थम चुके थे, मै बड़ी कठिनाई से बोला था, मुझ से भूल हुई, कमला, मुझे क्षमा कर दो। और उत्तर मे वह कुछ नही बोली थी। फिर जब वह मुझ से कोई बात किये बिना अकेली ही घर की ओर लौट पड़ी थी, तो मुझे उसकी इस क्रिया पर और भी आश्चर्य हुआ था। उस दिन मैं बहुत अंधेरा छा जाने तक वहाँ बैठा रहा था।

—शायद तुम दोनों ने एक दूसरे को अच्छी तरह समझने में भूल की थी,—प्रौढ़ व्यक्ति ने हल्की-सी आलोचना की।

—शायद,—उसके मुँह से निकला—यही बात हो। हाँ, दूसरे दिन डाक्टर साहब के मुँह से सुना था, कमला को फिर टेम्परेचर हो आया है। पिछली रात वह बहुत अस्थिर रही थी और बेचैन। उसने कुछ खून भी थूका था। डाक्टर को उसके अचानक इस परिवर्त्तन पर आश्चर्य था।—इतना कहकर वह पहाड़ों की ओर देखने लगा, जिसके पीछे क्षितिज पर लालिमा फैली हुई थी। वृक्षों की शाखाओं पर चिड़ियों ने शोर मचा रखा था। उन्हीं पेड़ों की छाया झील के जल पर हिलोरें लेती हुई धीरे-धीरे आँखों से ओझल-सी होती जा रही थी। एक अजीब-सी उदासी वहाँ फैल गयी थी।

प्रौढ़ व्यक्ति ने मानो उसके मन को कुरेदते हुए पूछा—इसके पश्चात् क्या हुआ, मिस्टर अनूप? क्या आप कमल के रूठने का कारण नहीं समझ सके?

वह कुछ गम्भीर होकर बोला—महाशय, आप तो मुझसे इस प्रकार प्रश्न कर रहे हैं, जैसे इस दुःखद घटना से आपका कोई विशेष लगाव है। क्या कीजिएगा इन बातों को जान कर ?

प्रौढ़ व्यक्ति ने गहरी साँस ली और कहा—क्या उत्तर दूँ आपके प्रश्न का ? मैं यह बातें आप से इसलिये पूछ रहा हूँ कि मुझे आप से सहानुभूति है।

—क्यों ?

—इसलिए कि आप एक बहुत अच्छे आदमी हैं।

—ओह !—जैसे उसकी मन-वीणा के तार झनझना उठे हों ! उसने एक गहरी साँस ली और फिर पश्चात्ताप करता हुआ बोला—क्षमा कीजिएगा, मैंने आपकी बात का गुस्सा मनाया। कमला भी मुझे ऐसा ही समझती थी। एक बार उसके मुँह से भी मैंने ऐसे ही शब्द सुने थे। उसके खून थूकने की बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ था। इस घटना के तीसरे दिन मैं एक सन्ध्या को उससे मिलने गया था। वह थकी-हारी-सी उदास अपने कमरे में एक पलंग पर लेटी विश्राम कर रही थी। मैंने द्वार पर खड़े-खड़े उससे पूछा था, मैं अन्दर आ सकता हूँ, कमल ? वह मुँह से कुछ नहीं बोली थी। उसने आँखों के इशारे से मुझे अन्दर आ जाने की अनुमति दी थी। मैंने उसके निकट एक कुर्सी पर बैठते हुए उससे पूछा था, अब तुम्हारी तबीयत कैसी है, कमला !.. अच्छी हूँ। और फिर उसने मुझसे पूछा था, तुम कैसे हो ? जी रहा हूँ, यह था मेरा उत्तर। और फिर मैं डाक्टर की बात दुहराते हुए बोला था, कमला, डाक्टर कहता था, तुम्हारा टेम्परेचर फिर इन्क्रीज कर गया है और तुमने फिर खून थूका है।

—हाँ थूका था, वह धीरे से बोली थी। यह तो अच्छा नहीं, मेरे शब्दों में निराशा और याचना थी, मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ,

कमला । मैं तुम्हारे खून थूकने का कारण जानता हूँ। तुम्हें शायद मेरी बातों से दुःख पहुँचा है। मेरे मुँह से अनजाने ही एक ऐसी बात निकल गयी थी, जो शायद मुझे नहीं कहनी चाहिये थी। मेरे जैसा आदमी, जो जिन्दगी और मौत के दरम्यान झूल रहा हो, यदि ऐसी बातें करे, तो यह निरी मूर्खता है । मैं...और उसने मेरे मुँह पर हाथ रख दिया था । ऐसा न कहो !—वह मेरी ओर करुणा-भरी आँखो मे देखती हुई बोली थी, मैं तुमसे क्षमा चाहती हूँ ! उसकी आँखो में आँसू छलछला आये थे । उस दिन मेरे व्यवहार से तुम्हें अवश्य ही दुःख पहुंचा होगा । उस दिन मैं होश मे नहीं था। मैंने उसे विश्वास दिलाते हुए कहा था... कमला ! मैं अब तुमसे फिर कभी ऐसी बातें नहीं करूँगा ।.. वह चुप थी । मैं कहता गया, तुम्हारे पिता जी शायद तुमसे मिलने आये हुए हैं । अभी-अभी मैंने एक प्रौढ़-व्यक्ति की झलक देखी थी । जब मैं यहाँ बँगले मे प्रवेश कर रहा था, वह एक गाड़ी मे सवार हो रहे थे । मैं उन्हे सामने से नहीं देख सका । शायद वह डाक्टर को लेने गये होंगे। डाक्टर ने मुझे भी चारपाई पर लेटे ही रहने का आदेश दिया था, लेकिन मैं यहाँ चला आया। मैं शीघ्र ही वापस लौट जाऊँगा।— मैं जब ये बातें कर रहा था, कमला की दृष्टि मुझ से हट कर दरवाजे की ओर गड़ गयी थी । उसके चेहरे पर एक रंग आया और एक गया। और फिर वह धीरे से बोली थी, वह मेरे पिता नहीं थे, अनूप । तब कौन थे? इसके पहले कि वह मेरे प्रश्न का उत्तर दे, उसकी आया ने कमरे में प्रवेश करते हुए हमारी वार्ता भंग कर दी थी। और वह कह रही थी, गरम पानी तैयार है, बीबी जी, क्या यहीं ले आऊँ ? नहीं, बाथ रूम में ले चलो, कमला का उत्तर था । और फिर वह मुझ से बोली थी तुम बैठो, मैं अभी मुँह-हाथ धोकर आयी। मैंने कहा, मैं अब चलता हूँ, कमला ! हो सका, तो कल सबेरे आऊँगा ।

—उस समय वह पलंग पर सीधी उठकर बैठ गयी थी और मुझसे कह रही थी, मैं आजकल में यहाँ से जा रही हूँ, अनूप !..

—जा रही हो !—मुझे आश्चर्य हुआ था,—कहाँ ?

—घर ।

—लेकिन तुम...तुम तो यहाँ इलाज करवा रही हो ?

—इस इलाज से कोई फायदा नहीं, मैं कभी अच्छी नहीं हो सकती ।

—नहीं-नहीं यह तुम क्या कहती हो ! तुम्हारा ख्याल गलत है । तुम्हारा स्वास्थ्य पहले से काफी सुधर चुका है ।

—खाक सुधरा है ! सच तो यह है कि मैं जीने की अपेक्षा मरना अधिक पसन्द करती हूँ, अनूप ।

—ओह ! ऐसी अशुभ बातें अपने मुँह से न निकालो ।

—मुझे उसकी बातें सुनकर दुख हुआ था ! वह नम्रतापूर्वक मुझसे पूछ रही थी, यहाँ से चले जाने के बाद जब मैं तुम्हें पत्र लिखा करूँगी, तो तुम मुझे उनका उत्तर तो दिया करोगे न, अनूप ?

—जरूर दिया करूँगा ! यह मेरा उत्तर था । अब यह निश्चित था कि वह यहाँ से चली जायगी । मैंने उसके इस इरादे को बदलने का यत्न किया था और कहा था, कमल यदि तुम यहाँ से न जाओ, तो अच्छा है । मैं तुमसे अनुरोध करूँगा, तुम यहीं रहो ।

—यहाँ रहना बहुत कठिन है । मैं अब यहाँ रहना नहीं चाहती । मैं यहाँ से बहुत दूर चली जाना चाहती हूँ ।..और देखो,—उसने बात बदल कर कहा था—तुम अपने इलाज के लिए रुपए-पैसे की चिन्ता न करना । मैंने डाक्टर-द्वारा तुम्हारे नाम बैंक में पाँच हजार रुपये जमा करवा दिये हैं ।

—ऐसा तुमने क्यों किया ? मुझे उसकी बातें सुनकर आश्चर्य-पर-आश्चर्य हो रहा था । उसे मेरा बहुत खयाल था ।

प्रौढ़ व्यक्ति कुछ चमक कर बोला—हाँ अब तो मान गये न कि उसे तुमसे स्नेह था ?

—मैंने इससे इन्कार ही कब किया है ? वह मेरा आदर करती थी, और मैंने सदैव उसका आदर किया ।

प्रौढ़ व्यक्ति ने फिर प्रश्न किया—क्या यहाँ से जाकर उसने फिर कभी तुम्हें याद किया था ?

—अवश्य ! मुझे उसके पत्र बराबर आते रहे थे। वह शायद मुझे कभी नहीं भूल सकी थी और न मैं ही कभी उसे भूल पाया । वह मुझे हमेशा याद आती रही । मैं जब कभी भी अपने निवास-स्थान से निकल कर इधर झील की ओर आता, मुझे ऐसा लगता, जैसे कमला अपने बंगले के बरामदे में खड़ी मेरा इन्तजार कर रही है । और जब मैं घास के मैदान को पार करता हुआ इस ओर आता, मुझे ऐसा प्रतीत होता, जैसे वह मेरे साथ-साथ चल रही है, और जब मैं इस झील के किनारे खड़ा इसके दूसरे किनारे को निहारने का प्रयत्न करता, वह दूर खड़ी मुझे अपनी ओर बुलाती दिखायी देती । मैं उसे कभी न भूल सका । मुझे उसका अन्तिम पत्र, जो उसके हाथों का लिखा हुआ नहीं था, पिछली मार्च में मिला था । जिसमें उसने मेरे स्वास्थ्य की मंगल कामना की थी । यह भी लिखा था कि वह पहले से काफी स्वस्थ है, और जब वह अधिक स्वस्थ हो जाएगी, तब एक बार मुझसे मिलने के लिए यहाँ अवश्य आएगी । वह पत्र पढ़कर मुझे बड़ी खुशी हुई थी । आज उस चिट्ठी को आए चार-पाँच महीने बीत गये । पिछले वर्ष जुलाई के महीने में वह यहाँ ही थी । उसे देखे पूरा एक वर्ष बीत चुका है । इधर चार महीनों से उसका कोई पत्र नहीं आया, न जाने क्यों ?

वह कैसी है, इसकी भी खबर नहीं मिली । मेरा अपना स्वास्थ्य अब द्रुतगति से गिरने लगा है । वजन पहले से काफी कम हो गया है । दवा और उपचार किसी से कोई फायदा नहीं । मैंने अपनी ओर से कमला को दो-तीन पत्र डाले थे । पर किसी का कोई उत्तर नहीं मिला । क्या कारण है, यह भी मेरी समझ में नहीं आता !—इतना कहकर वह कुछ क्षणों के लिए मौन हो गया । दूर क्षितिज की लालिमा कुछ मन्द पड़ने लगी थी । उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और फिर कहने लगा— दिन ढलने को है और रात आ जाने को, मुझे अब रोग से मुक्ति नहीं मिल सकती । मैं कुछ दिनों के बाद अचानक ही मर जाऊँगा । मैं बड़ा ही विचित्र आदमी हूँ । मैं जब किसी से मिल लूं, तो उसे भुलाना मेरे लिए असम्भव हो जाता है, और लोग मुझे भूल जाते हैं । मैं बड़ा ही अभागा हूँ ! लेकिन कमला के बारे में ऐसा नहीं सोच सकता । मुझे विश्वास है, मेरी मृत्यु से पहले वह एक बार यहाँ अवश्य आयगी !...—इतना कहकर वह मौन हो गया । उसकी दृष्टि झील के हिलोरे लेते हुए जल पर गड़ गयी । एक किनारे से शेफाली के कुछ फूल बहते हुए उस ओर आ लगे थे । उन्हें देख कर उसे याद आया, एक दिन जब उसने, ऐसे ही कुछ फूल कमला को भेंट किये थे, वह उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुई थी, और फिर अचानक उसकी आँखों में आँसू डबडबा आये थे । उस दिन भी वह उसके रोने का कारण नहीं समझ सका था । उसका उस समय कुसमय रोना उसके लिए हमेशा एक समस्या बनी रही । वह उन्हीं फूलों को देखता रहा ।

प्रौढ़ व्यक्ति ने एक गहरी साँस ली—मिस्टर अनूप, वह बड़ी ही विचित्र लड़की थी, जिसने हमेशा सपने देखे । अपना सब कुछ लुटाया और खोया, लेकिन पाया कुछ नहीं । और यह है उसकी आखिरी निशानी !—अपनी जेब में से एक बड़ा-सा लिफाफा निकालता

हुआ वह बोला—उसे अब आप चाहे जितना याद करें, लेकिन वह यहाँ आने से रही !—उसने लिफाफा आगे बढ़ा दिया ।

उसने लिफाफा ले लिया । उसमे एक चित्र था । दिवस के अन्तिम प्रहर और क्षितिज की डूबती हुई लालिमा के क्षीण आलोक मे, वह लिफाफे में से चित्र निकाल कर देखने लगा । बड़े गौर से देखता रहा । वह कमला ही का चित्र था । कमला सोयी पड़ी थी, गहरी अनन्त निद्रा मे, असंख्य फूलों के ढेर में, फर्श पर बिछी हुई दरी पर मरी-मुरझायी-सी । और नीचे फोटो के लिखा था, स्वर्गीया श्रीमती कमला कपूर । उसने फिर एक बार कमला को पहचानने का प्रयत्न किया । उसके सिरहाने उदास मुद्रा में शायद सिस्टर कपूर हैं । एक प्रौढ़ व्यक्ति..उसने नजरें उठा कर देखा, वह प्रौढ़ व्यक्ति, जो उसके पास बैठा इतनी देर से बातें कर रहा था, अब वहाँ नहीं था । वह माथा झुकाये एक पगडंडी पर धीरे-धीरे आगे बढ़ता चला जा रहा था । वह मुँह उठाये उसे जाता देखता रहा । उसका सारा शरीर काँप रहा था । फोटो उसके काँपते हुए हाथों से छूट कर झील में जा गिरा था । शाम का अँधेरा और घना हो चला था और ओस गिरने लगी थी ।

पत्ते झड़ने लगे

पछिया चलने लगी थी और बरगद के पत्तों से सारी गली पट गई थी। जब गली से गुजरो, 'चर-चर चटक' का स्वर उत्पन्न होता। कभी यह स्वर कानों को प्रिय लगता और कभी नीरस। बच्चे धरती पर बिखरे पत्तों पर बैठ कर खेलते। इधर जब सोमारी गली में झाड़ू देने आई थी, बच्चों ने उसे रोक दिया और कहने लगे, "जमादारिन हम यहाँ झाड़ू नहीं देने देंगे। हम सब यहाँ खेल रहे हैं....।.।"

सोमारी हँस कर बोली, "अच्छा अच्छा ..खेलो मेरे बच्चों खेलो....जी भर कर खेलो.. "

गली की कुछ महिलाओं ने भी बच्चों का समर्थन करते हुए कहा, "हाँ जमादारिन रहने दो न..पत्ते पड़े तुम्हारा क्या बिगाड़ते हैं। अच्छा ही तो है, धूल नहीं उड़ती।"

सोमारी निश्चिंत हो कर बरगद वाले सिमेन्ट के पक्के चबूतरे पर बैठ गई और उन महिलाओं से दु:ख-सुख की बातें करने लगी।

जब सोमारी इस तरह काम छोड़कर अराम करने के लिये चबूतरे पर बैठ जाए, तो बस बैठी ही रहती है। दो-तीन-चार घंटे, चाहे जितना जी चाहे। अपने पेट की उसे परवाह नहीं रहती। कोई उसे काम के लिये कुछ नहीं कहता..।

उसका जीवन बड़े ही विचित्र ढंग से बीता है। अपने बीते जीवन की कहानी सुना-सुना कर वह हरएक के मन पर किसी-न-किसी प्रकार का प्रभाव डालने का प्रयत्न करती ही रहती है।

उसके कहने के मुताबिक जब देश के एक वयोवृद्ध नेता इस नगर में पधारे थे, उन्हें एक बंगले में ठहराने का आयोजन किया गया था, लेकिन उन्होंने एक भंगी की कुटिया में, जो हरिजन बस्ती में थी, रहना स्वीकार किया था। उन्होंने किसी हरिजन ही के हाथ का बना हुआ भोजन ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की थी। और इसी सोमारी ने नहा धो, स्वच्छ होकर, आदेशानुसार बूढ़े बाबा के लिए भोजन तैयार किया था। सोमारी को इस बात का गर्व था कि एक महान आदमी ने उसके हाथों का बना हुआ भोजन ग्रहण किया। भंगियों के टोले में उसका मान बढ़ गया था।

सोमारी के जीवन में कई घटनाएँ घट चुकी हैं जिनकी याद हमेशा उसके मन को कुरेदती रहती है। जब अवसर मिले, वह उनकी चर्चा से बाज नहीं आती। उन घटनाओं में से एक विशेष घटना, एक गोरे साहब से सम्बन्ध रखती है। जब सोमारी नई-नई इस नगर में आई थी, वह जवान थी और उसकी माग में नया सिंदुर पड़ा था। वह उन दिनों गोरे साहबों के बंगले में काम करती थी। एक साहब की उस पर बड़ी कृपा थी। वह रोज उसे एक रुपया इनाम दिया करता था। एक बार तो साहब ने खुश होकर उसे सौ रुपये का नोट दे डाला था। सोमारी उस गोरे साहब की बड़ी प्रशंसा करती थी। जब उसकी चर्चा आरम्भ करती, उसके खाने-पीने, पहनावे से लेकर मोटर और बंगले तक का जिक्र कर जाती जैसे वह उसकी प्राइवेट सेक्रेटरी रह चुकी हो। उससे उसकी कोई भी बात छिपी हुई नहीं थी। वह लोगों को यह भी बताती थी कि साहब की कोई मेम नहीं थी। वह ह्विस्की और ब्रांडी बहुत पीता था। एक बार उसने उसे एक पूरी बोतल ब्रांडी की दे दी थी। सोमारी का पति

ब्रांडी की बोतल पाकर बहुत खुश हुआ था। जरूरत से ज्यादा पीकर उसने मुहल्ले में खूब उधम मचाया था। और इसके बाद वह गली-महल्ले में सब से यह कहता फिरता था, अरे देखो, मेरा चेहरा साहबों के चेहरे जैसा हो गया है। मैं पहले से मोटा हो गया हूँ।

उन्हीं दिनों सोमारी के पाँव भारी हो गये थे, और कुछ महीनों बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया था। साहब ने यह समाचार सुन कर उसके यहाँ ब्रांडी की एक बोतल और भिजवा दी थी। सोमारी का कहना था बस यही बच्चा पैदा होने के समय जो हवा उसे लगी थी, और जो स्वास्थ्य उसका बिगड़ा था, फिर वह कभी नहीं सुधर सका। अभी उसका लड़का केवल दस ही वर्ष का था कि पति की मृत्यु हो गई। साहब विलायत चला गया। बस नगर में एक वह थी और एक लड़का। और अपना सगा-सम्बन्धी कोई नहीं था। उसने अपने बच्चे को हरिजन स्कूल में भरती करवा दिया था जहाँ वह सातवीं कक्षा तक पढ़ा। और फिर नौकरी पर भी लगवा दिया था। एक प्रकार से वे घर के सुखी थे और निश्चिन्त भी। उस घर में यदि कोई थोड़ा बहुत दुःखी था, तो वह उसका लड़का और उसके दुःख का कारण थी सोमारी। सोमारी शराब बहुत पीती थी। बेटे को माँ का इतना शराब पीना अच्छा नहीं लगता था। और सोमारी शराब इसलिये अधिक पीती थी कि बहुत सारी बीमारियाँ उसका पीछा नहीं छोड़ती थी। शायद इसी बात का उसे दुख था, और इसी दुख को भूल जाने के लिये वह शराब पीती थी। शरीर से चिमटे कई रोगों के कारण वह काम से गैरहाजिर रहती थी। जिस दिन तकलीफ के बावजूद वह नागा न करे, उस दिन बरगद वाले चबूतरे पर बैठी वह गली की औरतों से गप लड़ाती।

उसके कहने के मुताबिक जब देश के एक वयोवृद्ध नेता इस नगर में पधारे थे, उन्हें एक बंगले मे ठहराने का आयोजन किया गया था, लेकिन उन्होंने एक भंगी की कुटिया में, जो हरिजन बस्ती मे थी, रहना स्वीकार किया था। उन्होंने किसी हरिजन ही के हाथ का बना हुआ भोजन ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की थी। और इसी सोमारी ने नहा धो, स्वच्छ होकर, आदेशानुसार बूढ़े बाबा के लिए भोजन तैयार किया था। सोमारी को इस बात का गर्व था कि एक महान आदमी ने उसके हाथों का बना हुआ भोजन ग्रहण किया। भंगियो के टोले मे उसका मान बढ़ गया था।

सोमारी के जीवन में कई घटनाएँ घट चुकी हैं जिनकी याद हमेशा उसके मन को कुरेदती रहती है। जब अवसर मिले, वह उनकी चर्चा से बाज नहीं आती। उन घटनाओं में से एक विशेष घटना, एक गोरे साहब से सम्बन्ध रखती है। जब सोमारी नई-नई इस नगर में आई थी, वह जवान थी और उसकी माग में नया सिंदुर पड़ा था। वह उन दिनों गोरे साहबों के बंगले में काम करती थी। एक साहब की उस पर बड़ी कृपा थी। वह रोज उसे एक रुपया इनाम दिया करता था। एक बार तो साहब ने खुश होकर उसे सौ रुपये का नोट दे डाला था। सोमारी उस गोरे साहब की बड़ी प्रशंसा करती थी। जब उसकी चर्चा आरम्भ करती, उसके खाने-पीने, पहनावे से लेकर मोटर और बंगले तक का जिक्र कर जाती जैसे वह उसकी प्राइवेट सेक्रेटरी रह चुकी हो। उससे उसकी कोई भी बात छिपी हुई नहीं थी। वह लोगों को यह भी बताती थी कि साहब की कोई मेम नहीं थी। वह व्हिस्की और ब्रांडी बहुत पीता था। एक बार उसने उसे एक पूरी बोतल ब्रांडी की दे दी थी। सोमारी का पति

ब्रांडी की बोतल पाकर बहुत खुश हुआ था । जरूरत से ज्यादा पीकर उसने मुहल्ले में खूब उधम मचाया था । और हफ्ते बाद वह गली-मुहल्ले में सब से यह कहता फिरता था, अरे देखो, मेरा चेहरा साहबों के चेहरे जैसा हो गया है । मैं पहले से मोटा हो गया हूँ ।

उन्हीं दिनों सोमारी के पाँव भारी हो गये थे, और कुछ महीनों बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया था । साहब ने यह समाचार सुन कर उसके यहाँ ब्रांडी की एक बोतल और भिजवा दी थी । सोमारी का कहना था बस यही बच्चा पैदा होने के समय जो हवा उसे लगी थी, और जो स्वास्थ्य उसका बिगड़ा था, फिर वह कभी नहीं सुधर सका । अभी उसका लड़का केवल दस ही वर्ष का था कि पति की मृत्यु हो गई । साहब विलायत चला गया । बस नगर में एक वह थी और एक लड़का । और अपना सगा-सम्बन्धी कोई नहीं था । उसने अपने बच्चे को हरिजन स्कूल में भरती करवा दिया था, जहाँ वह सातवीं कक्षा तक पढ़ा । और फिर नौकरी पर भी लगवा दिया था । एक प्रकार से वे घर के सुखी थे और निश्चिन्त भी । उस घर में यदि कोई थोड़ा बहुत दुःखी था, तो वह उसका लड़का और उसके दुःख का कारण थी सोमारी । सोमारी शराब बहुत पीती थी । बेटे को माँ का इतना शराब पीना अच्छा नहीं लगता था । और सोमारी शराब इसलिये अधिक पीती थी कि बहुत सारी बीमारियाँ उसका पीछा नहीं छोड़ती थीं । शायद इसी बात का उसे दुःख था, और इसी दुःख को भूल जाने के लिये वह शराब पीती थी । शरीर से चिमटे कई रोगों के कारण वह काम से गैरहाजिर रहती थी । जिस दिन तकलीफ के बावजूद वह नागा न करे, उस दिन बरगद वाले चबूतरे पर बैठी वह गली की औरतों से गप लड़ाती ।

उस दिन भी बरगद वाले चबूतरे पर बैठी अपने लड़के के गुण गाने लगी। कहती थी—"मेरा लड़का बड़ा ही सीधा है। माँ लोग, वह कमाकर लाकर सब मेरे हाथ में धर देता है। मेरे सामने कभी मुँह नहीं खोलता। मैंने उसे बड़े यत्न से पाला पोसा है। सात किलास तक पढ़ाया है। मुझे कहता है, माँ तुम काम छोड़ दो। मैं कहती हूँ बेटा जब तक तन में शक्ति है तब तक काम करूँगी। हम नौकरी की कोई परवाह नहीं करते। कोई लाला आवे और पूछे कि क्या सोमारी ने गली साफ नहीं की तो कह देना नहीं। यदि वे हम से पूछेंगे कि गली साफ क्यों नहीं की ? तो मैं कहूँगी मेरी मरजी। मेरे बच्चों ने मुझ से कहा, 'मौसी झाड़ू मत दो, मैं उनकी बात मान गई अब झाड़ू नहीं दूँगी। आज काम बन्द।

"सोमारी बुआ तो आज फिर कोई गाना सुनाओ!" महिलाओं ने फरमाईश की।

"सच, क्या मेरा गाना सुनोगी...." उसने कागज में लिपटा हुआ पान का बीड़ा निकालकर मुँह में डालते हुए कहा "क्या सुनाऊँ बोलो...?"

"जो मरजी आए सुनाओ और नाचो भी।"

"सच"।

"हाँ नाच भी दिखाओ" वे एक स्वर से बोलीं और एक दूसरे की तरफ देख-देख कर आँखों ही आँखों में कुछ इशारे करती हुई मुस्कुराने लगीं।

सोमारी ने मुँह की पीक एक ओर थूकते हुए कहा "अच्छा लो गाती हूँ" और मुख पर कुछ विचित्र से भाव लाकर, सिर को डोलाती हुई, आँखें मटकाती हुई वह गाने लगी—"ऊँची ऊँची महला के नीची बा दुवरिया।"

वह चबूतरे पर से उठ खड़ी हुई। साड़ी का आँचल कमर से कस कर लपेट लिया और विचित्र भाव भंगिमा दिखाती हुई नाचने लगी। महिलाएँ अपने ओंठ दाँतों तले दबा अपनी हँसी को रोकने का प्रयत्न करने लगीं। बच्चे खुशी से तालियाँ पीटने लगे। गली में उस समय सिवाय स्त्रियों और बच्चों के और कोई नहीं था। इसलिये सोमारी खूब दिल खोल कर नाची। एक अजीब सा समा बँध गया।

सोमारी ने वह सारा दिन उसी गली में बैठ कर बिता दिया..।

शाम को जब वह घर जाने लगी, बहुत खुश नजर आ रही थी। जब उनका मेट गली की तरफ आया और पत्तों के ढेर पड़े हुए देखा तो वह उस पर बहुत बिगड़ा। उसने उसे कामचोर और न जाने क्या कुछ कहा। पहले तो सोमारी चुपचाप सब कुछ सुनती रही और जब वह चुप हो गया, तब उसने अपनी बकवास शुरू कर दी। सब को सुना-सुना कर उसने मेट को गालियाँ बकीं।

दूसरे दिन सवेरे सोमारी गली में दिखाई नहीं दी। पत्ते उसी तरह धरती पर बिछे हुए थे, और कुछ बच्चे वहाँ बैठे खेल रहे थे। आनन्दी भड़भूजिन अपनी भट्टी के लिये कुछ पत्ते बटोर कर ले गई थी। सोमारी के बिना गली सुनसान दिखाई दे रही थी। कहीं दोपहर के बाद वह कुछ गिरती-पड़ती सी उस गली में आई। ऐसा शक हो रहा था, जैसे उसने कुछ शराब पी रखी है। वह हल्के सुरों में कोई गाना गुनगुना रही थी। और इसी प्रकार वह गाती-गाती सो गई। बरगद के बूढ़े पत्ते छर छर करते हवा के झोंकों से झड़ रहे थे। साँझ तक वह सोती ही रही तब कहीं सामने घर वाली चन्दा ने उसे जगाया, "आज तुम्हारी तबीयत कुछ खराब है क्या बुआ, उठो जाओ,

साँझ हो गई।" वह आँखें मलती हुई उठ बैठी- बोली-"थोड़ा पानी ला दो बिटिया।"

चन्दा एक लोटे में ठंडा जल ले आई और उसकी अँजुलियों में उँडेलने लगी। सोमारी ने उस पानी के छींटे अपनी आँखों में मारे, कुल्ली की और फिर गट-गट पीने लगी। पानी पीकर उसने लम्बी साँस ली और चन्दा को आशीर्वाद देती हुई बोली. "बिटिया तेरा भला हो... मेरा तो सारा शरीर जल रहा था।"

"क्यों....?" चन्दा ने आश्चर्य से पूछा।

"क्या बोलूँ बिटिया" वह जैसे बड़ी राजदारी के अन्दाज में बोली "बीमारी है....।"

"कैसी बीमारी" चन्दा ने कुछ घबराकर पूछा।

"ऐसे ही है तुम्हें क्या बताऊँ...।"

"तुम शराब क्यों पीती हो बुआ...?"

वह तो अपना खाना है बिटिया, गरीबों की तो खुराक ही वही है. ."

"नहीं....। स्त्री होकर शराब पीती हो, यह अच्छा नहीं।"
"सच।" वह मुस्कुरा दी। उसने टोकरी और झाड़ू उठाया और हाजिरीवाले दफतर की तरफ चल दी।

चन्दा की बातों का उस पर इतना असर जरूर पड़ा कि वह हाजिरी देकर सीधी शराब की भट्टी की ओर जाने की अपेक्षा घर की ओर चल दी। जब अपने टोले में पहुँची, अन्धेरा छा चुका था। उसकी अपनी गली में एक अजीब सा हँगामा मचा हुआ था। दो पार्टियाँ आपस में झगड़ने को तैयार खड़ी थी। उसका लड़का बड़े तैश में वाही तबाही बक रहा था। झगड़े

का कारण उसकी समझ में नहीं आया। वह अपने लड़के के पास गई और पूछने लगी—"क्या बात है बेटा, किसलिये झगड़ रहे हो..?"

लड़का बोला—"माँ ये कुत्ते मुझ पर इलजाम लगाते हैं। देखो न..."

ठीक उसी समय दूसरी पार्टी वालों में से एक बोला "अबे कुत्ता तू है....कुत्ता तेरा बाप...देखो सोमारी, समझा लो अपने बेटे को नहीं तो खून खराबा हो जाएगा! किसी की बहू-बेटी को छेड़ना खेल नहीं है, अपने बेटे को घर ले जाओ नहीं तो लाठी चल जाएगी....."

"मर्द के बच्चे हो तो चलाओ लाठी। देखता हूं कैसे चलाते हो" लड़के ने मुखालिफ पार्टी के लोगों को ललकारा। सोमारी ने चीख कर कहा—"चुप हो जाओ...चुप हो जाओ!" और वह विरोधी पार्टी के अगुआ से पूछने लगी। "बात क्या है घसिया?"

घसिया ने जवाब दिया—"यह हम पीछे बताएँगे। पहले अपने लड़के को घर ले जाओ नहीं तो तूफान मच जाएगा।"

सोमारी अपने लड़के से बोली—"चल बेटा, घर चल।" वह शराब के नशे में चूर था, बोला—"नहीं जाऊंगा, नहीं जाऊंगा देखूँ कौन साला मुझे मारता है...?"

"बेहूदा घर चल..." सोमारी उसे हाथ से पकड़ कर खींचती हुई बोली "शर्म नहीं आती, शराब पीकर सब से झगड़ना है..."

"क्या तुम शराब नहीं पीती माँ...तुम जब शराब पीकर सब से झगड़ा किया करती हो, तुम्हें शर्म नहीं आती।"

"चल ज्यादा बकवास मत कर..." वह उसके मुँह पर हल्की सी चपत मारती हुई फिर उसे खींचकर ले जाने का प्रयत्न करने

लगी। लड़के ने उसका हाथ झटक दिया। सोमारी विरोधी पार्टी के लोगों को दोनों हाथ जोड़ती हुई बोली "तुम लोग सब जाओ, जाओ मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं। मैं इसे घर ले जाऊँगी तुम सब जाओ .." और एक बार उसने अपने बेटे के साथियों की ओर भी तीव्र दृष्टि से देखा "जाओ मरो, तुम लोग क्या कर रहे हो . . ?"

सब अपनी जगह से खिसकने लगे, और जब वहाँ उसके और लड़के के सिवा कोई नहीं रहा, तब वह उसे डपट कर बोली—"अब चलेगा या नहीं...याद रख मार-मार कर तेरा मुँह तोड़ दूँगी..।"

"तोड़ न, देखूँ कैसे तोड़ती है...?"

"अच्छा तो यह बात है...ले तब?" और उसने खींच कर एक चाँटा लड़के के मुँह पर मारा। नशे में मदहोश लड़का चकरा कर नीचे गिर पड़ा। सोमारी ने दो लात ऊपर से और और जड़ दिये... "बिरादरी में मेरी नाक कटाता है पाजी... उसका गला भर आया, और वह उसे एक हाथ से पकड़कर घसीटती हुई घर की तरफ ले चली। लड़का अड़ियल घोड़े की तरह रुक-रुक कर उसके पीछे चलने लगा। घर आकर उसने दरवाजा अन्दर से बन्द कर दिया और साड़ी के आँचल से अपने चेहरे का पसीना पोंछने लगी। उसका लड़का औंधे मुँह चार-पाई पर गिर पड़ा। सोमारी ने घर की बत्ती जलाई। अन्दर कोठरी में जाकर साड़ी बदलने लगी। तभी उसने लड़के का स्वर सुना..."पानी"। वह दौड़ी आँगन में आई गिलास से पानी लेकर लड़के को पिलाने लगी। जब वह पानी पी चुका, बड़े प्यार से उसने उसका माथा चूम लिया "चल उठ मेरे बेटे! अन्दर चलकर लेट जा! तू बेकार किसी से झगड़ा मत किया कर... !"

लड़का बोला—"तू जा माँ! मुझे मत छू....!"



"क्यों..?"

"...मैं कहता हूं, मत छू...।"

"मैं फिर मारूँगी तुझे, देख जो मेरा कहना नहीं माना तो...."
सोमारी ने दिखावे के लिये अपना हाथ ऊपर उठाया । "मार
साली मार....।" लड़का बच्चों की तरह बिलख-बिलख कर
रोने लगा " मुझे जनमते ही क्यों नहीं मार दिया ।"

"निर्लज्ज शर्म नहीं आती ऐसी बातें करते हुये ।"

"तू मुझे बचपन ही में मार डालती तो साला घसिया तुझे
साहब का बेटा नहीं कहता ।"

सोमारी के शरीर में एक झुरझुरी सी दौड़ गई। "क्या कहता है
घसिया...?" उसने चमक कर पूछा ।

"बोलता है, मैं साहब का बेटा हूँ..."

सोमारी ने गहरी सांस ली "तू ने उसकी बहन को कुछ कहा
था ..?"

"कहा था..." लड़का चीख कर बोला—"और कहता भी क्यों
न.. उसने जो तेरे ऊपर कीचड़ उछाली थी "।

"नहीं वह तो झूठ है । तू भी उसके साथ मूर्ख न बन !"
कहती हुई सोमारी अन्दर कोठरी में जाने लगी—"चल आ अन्दर
आ कर लेट जा...." वह अस्थिर सी अन्दर गई, और कोठरी
के एक कोने में खड़ी होकर झट उसने अपनी आँखों के आंसू पोंछ
डाले। वह फिर बाहर आँगन में आई, और फिर अन्दर कोठरी में
चली गई किसी ऐसे परेशान आदमी की तरह जो अन्धेरे में तहखाने
से बाहर निकलने का रास्ता ढूँढ रहा हो ।

उसका लड़का लंगड़ाता हुआ अन्दर आया और चारपाई पर

गिरता हुआ सा बोला—"और तुम्हारी बीमारी का भेद भी तो सबों को मालूम है। ऐसी खराब बीमारी तुम ने....."

"चुप रह निर्लज्ज' सोमारी चीख कर बोली—"हे भगवान ऐसा नीच बेटा होते ही मर जाना तो अच्छा था।" वह अपने दोनों हाथों से अपने मुँह पर चपत मारती हुई रोने लगी। "तुमने मार तो दिया! माँ मैं बिरादरी में अब कहीं मुँह दिखाने के लायक नहीं...." बेटा भी रूआंसी भरे शब्दों में बोला—"अब रह ही क्या गया है ?"

सोमारी कोठरी से बाहर निकल आई। लड़का बके जा रहा था—"साले अमिये को अपनी बहन का मान है। वह झूठ नहीं बोला...डाईन माँ तेरे ऊपर कलंक न होता तो मैं उस छोकड़ी से शादी करके ही रहता...।"

सोमारी आँगन में बैठी आँसू बहाती रही। लड़के ने उठकर एक बोतल में बची-खुची शराब गिलास में उड़ेल ली और गटगट, सब एक ही साँस में पी गया। गिलास उसने फर्श पर पटक दिया और औंधे मुँह चारपाई पर गिर पड़ा। उसे अपने आप का होश नहीं था।

कुछ घंटो के बाद आस-पड़ोस के कुछ लोगों ने सोमारी के घर पर से कुछ धूँआ उठता हुआ देखा। किसी वस्तु के जलने की गन्ध से वहाँ की हवा बोझल हो रही थी। उन्होंने सोमारी और उसके बेटे को पुकारा। कोई उत्तर नहीं मिला। कुछ देर बाद उन्होंने सोमारी के कराहने की आवाज सुनी।

वे दीवार फाँदकर घर के अन्दर चले गए और उन्होंने देखा, सोमारी धरती पर झुलसी पड़ी है। उसके शरीर से चिपके हुए कुछ कपड़ो से तब भी धुँआ उठ रहा था। उसने अपने बदन पर तेल छिड़क कर आग लगा ली थी। उसके बेटे को जगाया

गया। सारे टोले में शोर मच गया । सोमारी को अस्पताल ले जाने का प्रबन्ध होने लगा ।

लेकिन इससे पहले कि कोई उसके शरीर को छुए, आकाश की ओर देखते हुए उसने हमेशा के लिए अपनी आँखें मूँद लीं ।

दूसरे दिन एक नई भंगिन बरगद वाली गली में झाड़ दे रही थी । सब से दुःख भरे स्वरों में कह रही थी "सोमारी की टिकस कट गई, वह मर गई "

गली वालियों ने आश्चर्य से पूछा—"कैसे मरी ! अभी कल तो अच्छी भली थी...और परसों नाच गा रही थी....।"

भंगिन धीरे से बोली "उसने अपने बदन से किरासन तेल छिड़क कर आग लगा ली थी. ।"

"क्यों ..?"

'बेटे से झगड़ा हो गया था ! ..."

"क्यों.....?"

"पूछता था मेरा बाप कौन था. .?"

"हाय राम तब.....?"

"पूछता था. तुम्हे खराब बीमारी कैसे लगी...."

"ऊँई ऊँई...जरा धीरे बोलो....।" और वे तब एक दूसरे के मुँह की तरफ देखने लगी । भंगिन कह रही थी, "ऐसे रोग तो हमारे यहाँ सब को लग जाते हैं माँ लोग... लेकिन उसने अपने आप को तेल छिड़क कर फूँक लिया । उसकी मुक्ति नहीं होगी ।" और वह गली में बिखरे हुए सूखे पत्ते बटोर बटोर कर अपनी टोकरी में भरने लगी ताकि उन्हें किसी गढ़े में डाल कर फूँक दिया जाय....।

भी पूरी रकम न पाकर वे कुछ अप्रसन्न होते, उसे बुरा-भला कहते और फिर किसी दूसरी आसामी की तलाश मे चल देते।

दस वर्ष पहले जब रेजा मुझ से अपने वेतन के पैसे गिनवाने आयी थी तो उसके पैसों वाले लिफाफे पर उसका टाईप किया हुआ नाम पढ़कर मैंने अपने सन्तोष के लिए उससे पूछा था—'तुम्हारा नाम नीलमणी है न····?'

'जी बाबू जी....' वह मेरे मुँह से अपना नाम सुन कर बहुत खुश हुई थी ।

'तुम कब से चाकरी कर रही हो... ?'

'पन्द्रह साल से बाबू.....'

'बहुत अच्छा', मैंने हँसकर कहा था—'पन्द्रह साल में तो तुमने बहुत पैसे कमाये होंगे.....'

'क्या कमाया बाबूजी', वह कुछ निराशपूर्ण शब्दों में बोली थी—'मेरे पास तो फूटी कौड़ी भी नही .....'

'मैं जानता हूँ', मैंने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—'इतनी कमाई से पेट ही भर सके तो बहुत है ।'

वह बोली थी—'बाबू पेट भी तो नहीं भरता...'

और जब मैंने उसके दुखों की कहानी सुनी, तब मुझे पता चला वह एक बिगड़ैल और स्वार्थी पुरुष की स्त्री थी, और उससे अलग रहती थी। उसका पति उसकी सौत के साथ, जो उसकी रखेल थी, दूसरे घर मे रहता था । सूदखोरों और आवारा पति की छीन-झपट मे जो कुछ उसके पास बच रहता उससे वह अपना और अपनी एक लडकी का पेट भरती । हफ्ते के दिन, जिस दिन उसे वेतन मिलता, उस दिन अवश्य ही उसका अपने आदमी के साथ झगड़ा होता। वह निर्दयी उसे बुरी तरह पीटता और जान से मार डालने की

धमकियाँ देता । नशे में चूर होकर वह उसके घर आता और उसे तरह-तरह से परेशान करता। वह अपने पति के हाथों बहुत तंग थी, फिर भी उससे बचने का उसके पास कोई उपाय नहीं था। उसे अपनी लड़की के भविष्य की चिन्ता थी, अपनी चिन्ता थी। उसे कुछ सूझता नहीं था, वह क्या करे। किस प्रकार इस मुसीबत से छुटकारा पाये ।

मैंने उसे इन मुसीबतों से बचने का एक उपाय बताया था। एक हफ्ते के दिन जब वह अपने वेतन का लिफाफा लेकर मेरे पास आयी थी, मैंने उसके लिफाफे पर दस का अक्षर मिटा कर आठ बना दिया था। ये दो रुपये हर हालत में उसके पास बचे रह सकते थे। इस तरह वह सूदखोरों और अपने राक्षस आदमी से कम पगार मिलने का बहाना बना सकती थी। बचत का यह उपाय बताने और कुछ मेरी सहानुभूति के नाते वह मुझे सदा अपने सुख-दुःख की बातें बताती रहती। उसका मेरे साथ कुछ विचित्र-सा सम्बन्ध हो गया था।

मुझे याद है, कई सप्ताह बीत जाने पर एक दिन मैंने नीलमणी से हँसते हुए पूछा था—'अब तो तुम अपनी कमाई से कुछ न कुछ बचा लेती हो, कुछ दिन बाद तुम्हारे पास लगभग सौ-पचास रुपये हो जाएँगे। बताओ तो तुम इन रुपयों का क्या करोगी...?

वह मेरा प्रश्न सुन कर हँस दी थी। वास्तव में इस प्रश्न का कोई सिर-पैर नहीं था। पचास-साठ रुपये ही तो थे। आखिर लोग रुपये का क्या करते हैं। रुपया किस काम आता है, यह तो मैं भी जानता था। फिर न जाने क्यों मैं उसके मुँह से कुछ सुनना ही चाहता था। वह हँसती हुई बोली—'बाबू जी मेरे कितने रुपये जमा हो गये होंगे और मैं गरीब साल-दो-साल में कितने रुपये जमा कर लूँगी और फिर ये रुपये ..हाँ, इनसे बेटी का ब्याह

हफ्ते के दिन

मिल के बड़े फाटक के पास टाईम आफिस की खिडकियों के सामने, मर्द औरतों की एक अच्छी खासी भीड़ शनिवार के दिन अपना हफ्ते भर का वेतन लेने के लिए कुछ व्यग्र सी खडी हो जाती। उस दिन उन्हें वेतन लेने के लिए समय से कुछ पहले ही छुट्टी मिल जाती थी। तब मिल के बड़े फाटक के समीप, एक छोटा मेला-सा लग जाता था। खोमचेवाले अपने खोमचे लगाये सौदा बेचते, मनियारी वाले कंघी, चोटी, और कपड़े वाले कपड़े, धोती, साड़ी इत्यादि। इनके अलावा छोटे-मोटे महाजनों, काबुलियों और दूसरे सूदखोरों की भी तगड़ी फौज देखने को मिलती, जो अपनी-अपनी आसामियों से सूद वसूल करने के लिये चौकस रहते। एक-एक कर्जदार, अपने दो-दो तीन-तीन महाजनो के घेरे में घिरा, मन मे असमर्थता और हीनता के भाव लिये उनकी गालियाँ और बकवास सुनता।

जब कोई कर्जदार अपनी तनख्वाह के पैसे लेकर खिड़की के पास वाले लोहे के जंगले में से बाहर निकलता, तो सूदखोर उसकी ओर यों लपकते, जैसे शिकारियों का कोई गिरोह किसी असहाय शिकार को देखकर उस पर चारो ओर से टूट पड़ता है। और इस तरह से प्रायः सभी मजदूरों के वेतन का अधिक भाग हफ्ते के दिन महाजनो के हाथो में चला जाता।

हफ्ते के दिन मै टाईम आफिस के बगल वाले दफ्तर मे एक खिड़की के निकट बैठा, यह तमाशा देखता रहता। उस दिन मेरी नजरें एक बूढ़ी को ढूँढती रहती। मै उसे पिछले दस वर्षो से वहाँ आकर वेतन लेते देख रहा था। उसने मिल की नौकरी मे अपने

जीवन का बड़ा भाग बिता दिया था। उसके सिर के केश खिचड़ी हो चुके थे और चेहरा झुर्रियों से भर गया था। उसका नाम था नीलमणी, विपत्तियों ने उसे समय से पहले बूढ़ा बना दिया था।

तुफ्ते के दिन वह महाजनों की नजरों से छिपकर अपनी पगार लिये तुरन्त मेरी खिड़की की ओर बढ़ आती। सब रुपया मेरी ओर बढ़ा देती और अंगूठे से लगी टीप को स्याही दीवार से पोंछती हुई मुझ से कहती—'बाबू, देखो तो, मैंने इस हफ्ते पूरा काम किया है। चौदह आने रोज के हिसाब से क्या मेरी पगार ठीक मिली है?' मैं उससे सहानुभूति प्रकट करता हुआ पैसे उसके हाथ से ले लेता। प्रायः उसके वेतन की रकम पूरी ही होती। फिर भी उसके विश्वास और सन्तोष के लिए एक कागज पर कुछ हिसाब करके पूरी रकम गिनता और उसे वापस लौटाते हुए सन्तोषप्रद शब्दों में कहता—'रेजा, तुम्हारी पगार के पैसे पूरे हैं। लो गिन लो...' मैं उसे रकम बता देता।

इस साल से मैं निरन्तर उसके वेतन के पैसे गिनता आया था। मैं जानता था, उसका बँधा हुआ वेतन कितना है। इसीसे उसकी गुजर चलती है।

सदा की तरह जब वह मुझ से अपनी पगार के रुपये गिनवा कर सामने लगी भीड़ की तरफ बढ़ती तो उसके चेहरे का रंग कुछ बदला सा जाता। वह सूदखोरों की तरफ कुछ सहमी-सहमी और भयभीत आँखों से देखती। कुछ महाजन आगे बढ़ते और उसे घेर लेते। वे सब अपनी-अपनी रकम गिन कर सुनाते। मूल रकम और सूद का अलग-अलग ब्यौरा बताते। कोई दो रुपये, कोई चार रुपये। और कोई इससे भी अधिक सूद की रकम बताता। वह सब की ओर दयनीय दृष्टि से देखती, और मुँह से कुछ बोले बगैर अपने काँपते हुए हाथों से कुछ पैसे निकाल कर उन्हें थमा देती। सूद की

भी पूरी रकम न पाकर वे कुछ अप्रसन्न होते, उसे बुरा-भला कहते और फिर किसी दूसरी आसामी की तलाश में चल देते।

दस वर्ष पहले जब रेजा मुझ से अपने वेतन के पैसे गिनवाने आयी थी तो उसके पैसों वाले लिफाफे पर उसका टाईप किया हुआ नाम पढ़कर मैंने अपने सन्तोष के लिए उससे पूछा था—'तुम्हारा नाम नीलमणी है न····?'

'जी बाबू जी....' वह मेरे मुँह से अपना नाम सुन कर बहुत खुश हुई थी ।

'तुम कब से चाकरी कर रही हो... ?'

'पन्द्रह साल से बाबू.....'

'बहुत अच्छा', मैंने हँसकर कहा था—'पन्द्रह साल में तो तुमने बहुत पैसे कमाये होंगे ....'

'क्या कमाया बाबूजी', वह कुछ निराशपूर्ण शब्दों में बोली थी—'मेरे पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं .....'

'मैं जानता हूँ', मैंने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—'इतनी कमाई से पेट ही भर सके तो बहुत है ।'

वह बोली थी—'बाबू पेट भी तो नही भरता...'

और जब मैंने उसके दुखों की कहानी सुनी, तब मुझे पता चला वह एक बिगड़ैल और स्वार्थी पुरुष की स्त्री थी, और उससे अलग रहती थी। उसका पति उसकी सौत के साथ, जो उसकी रखैल थी, दूसरे घर मे रहता था । सूदखोरों और आवारा पति की छीन-झपट से जो कुछ उसके पास बच रहता उससे वह अपना और अपनी एक लडकी का पेट भरती । हफ्ते के दिन, जिस दिन उसे वेतन मिलता, उस दिन अवश्य ही उसका अपने आदमी के साथ झगड़ा होता। वह निर्दयी उसे बुरी तरह पीटता और जान से मार डालने की

धमकियाँ देता। नशे में चूर होकर वह उसके घर आता और उसे तरह-तरह से परेशान करता। वह अपने पति के हाथों बहुत तंग थी, फिर भी उससे बचने का उसके पास कोई उपाय नहीं था। उसे अपनी लड़की के भविष्य की चिन्ता थी, अपनी चिन्ता थी। उसे कुछ सूझता नहीं था, वह क्या करे। किस प्रकार इस मुसीबत से छुटकारा पाये।

मैंने उसे इन मुसीबतों से बचने का एक उपाय बताया था। एक हफ्ते के दिन जब वह अपने वेतन का लिफाफा लेकर मेरे पास आयी थी, मैंने उसके लिफाफे पर दस का अक्षर मिटा कर आठ बना दिया था। ये दो रुपये हर हालत में उसके पास बचे रह सकते थे। इस तरह वह सूदखोरों और अपने राक्षस आदमी से कम पगार मिलने का बहाना बना सकती थी। बचत का यह उपाय बताने और कुछ मेरी सहानुभूति के नाते वह मुझे सदा अपने सुख-दुःख की बातें बताती रहती। उसका मेरे साथ कुछ विचित्र-सा सम्बन्ध हो गया था।

मुझे याद है, कई सप्ताह बीत जाने पर एक दिन मैंने नीलमणी से हँसते हुए पूछा था—'अब तो तुम अपनी कमाई में कुछ न कुछ बचा लेती हो, कुछ दिन बाद तुम्हारे पास लगभग सौ-पचास रुपये हो जाएँगे। बताओ तो तुम इन रुपयों का क्या करोगी...?

वह मेरा प्रश्न सुन कर हँस दी थी। वास्तव में इस प्रश्न का कोई सिर-पैर नहीं था। पचास-साठ रुपये ही तो थे। आखिर लोग रुपये का क्या करते हैं। रुपया किस काम आता है, यह तो मैं भी जानता था। फिर न जाने क्यों मैं उसके मुँह से कुछ सुनना ही चाहता था। वह हँसती हुई बोली—'बाबू जी मेरे कितने रुपये जमा हो गये होंगे और मैं गरीब साल-दो-साल में कितने रुपये जमा कर लूँगी और फिर ये रुपये...हाँ, इनसे बेटी का ब्याह

करूँगी । कभी समय-कुसमय काम आयेंगे, आखिर मिट्टी का बरतन ही तो है, कब ठसक जाये । मैं कब तक माथे पर बोझा ढोती फिरूँगी । अभी तो बोझ ढोने का काम किसी प्रकार कर ही लेती हूँ । जब बहुत बूढी हो जाऊँगी, तब कौन खिलायेगा मुझे बैठा कर ?

इतनी बात सुनकर मुझे उससे और कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ । रुपये की इस मामूली सी बचत पर उसकी भविष्य की कितनी आशाएँ अवलम्बित थी । वह क्या नहीं सोचना चाहती थी और क्या नहीं करना चाहती थी । शायद भविष्य के बारे में वह कुछ सोचती ही रहती थी ।

फिर एक दिन की बात है, कई सप्ताह बाद सदा की तरह जब वह हफ्ते के दिन मेरे पास आयी, उसने अपने वेतन के पैसे सूदखोरो की नजरो से बचाकर मेरे हाथ में थमा दिये । मैंने लिफाफे पर लिखे अक्षर स्याही से बदल दिये । उस दिन वह कुछ चिन्तित और परेशान दिखायी देती थी । उसने लिफाफे में से दो रुपये का एक नोट निकाला और मेरे हाथों में थमाती हुई बोली—'बाबूजी आज आप ही मेरे रुपये अपने पास रखिए । जब जरूरत पड़ेगी ले लूँगी । मेरे पास रुपये बचते नहीं ।"

सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ । मैं पूछ बैठा 'क्यों ?' वह पीड़ित स्वरों मे बोली—'भाग्य मे नहीं है—अबतक जितने रुपये जोड़े थे मैंने, उन्हें मेरा आदमी घर से चुरा ले गया । मैंने तो छिपाकर रखे थे, पर किसी तरह उसके हाथ लग गये । एक पाई भी नहीं रहने दी पापी ने ।' कहते-कहते उसका स्वर भरा गया । उसकी आँखें छलछला आयी । कल्पनाओं का भव्य मन्दिर ढहकर धूल में मिल गया ।

मैंने उससे पूछा—'रुपये उसके हाथ कैसे लग गये ?' वह बोली—'मटके में छिपा कर रखे थे। किसी प्रकार उसकी नजर पड़ गयी और चुरा ले गया।

मैं सुनकर चुप रह गया।

कुछ देर वह भी मौन खड़ी रही फिर बोली—'आप रुपये रखेंगे न बाबू ..?

'जैसे कहो! रख लूंगा। जब जरूरत हो ले लेना।' फिर उससे पूछा—'तुम्हें मुझ पर विश्वास तो है...?'

वह बोली—'बाबू, आप भी कैसी बातें करते हैं। क्या रुपयों ही के लिए किसी पर विश्वास किया जाता है ?'

मैं चुप रह गया। इस युग में विश्वास की एक कसौटी रुपया भी तो है। और सब से बड़ी बात तो यह है कि विश्वास लेने वाले ही को विश्वास करने वाले का कृतार्थ होना पड़ता है।

उस दिन से मैं उसके रुपये रखने लगा। सप्ताह में दो और महीने में आठ। उसे मुझ पर पूरा विश्वास था। जिस दिन उसका जी चाहे वह मुझसे अपनी सारी रकम ले सकती थी। उसकी धरोहर मेरे पास सुरक्षित थी। इस बचत के सहारे उसकी आकांक्षाएं फिर एक नया जीवन पाने लगी थीं। फिर वह भविष्य की कुछ सुन्दर कल्पनाएं करने लगी थी। प्राय: मैं सुनता था कि उसका आदमी उसे रुपये के लिए तंग करता है। मारता और पीटता भी है। वह सब दुःख सह जाती है। पर उसे अपनी कमाई सौंपने को तैयार नहीं। इस प्रकार कई मास बीते....!

और फिर एक दिन मैंने उसे पहले की तरह उदास देखा। मैंने उससे इस उदासी का कारण पूछा तो मुझे पता चला कि उसका आदमी बीमार है। मेरे लिए यह खबर विशेष महत्व नहीं रखती

थी। किन्तु इसके बाद वह जब भी मेरे पास आती, मैं उसके पति की खबर पूछ लेता। इधर उसने मेरे पास पैसे रखने बन्द कर दिये थे। और उन्हें वह अपने पति के दवा-दारू ही में खर्च कर रही थी।

और फिर एक दिन, अचानक जब वह एक दोपहर को मेरे पास आयी, मैंने उसे बहुत परेशान पाया। उस दिन से भी अधिक परेशान और उदासीन, जिस दिन उसके आदमी ने उसे बुरी तरह पीटा था और उसके रुपये छीन लिये थे। मैंने समझा उस मुफ्तखोर जुआरी की दशा कुछ अधिक शोचनीय होगी, इसीलिए इतनी अधिक उदास है। मैंने पूछा...'नीलमणी तुम अच्छी तो हो..?'

'अच्छी हूँ बाबूजी ..!' वह धीरे से बोली।

'तुम्हारा आदमी अच्छा है...? मैंने फिर प्रश्न किया।

'नहीं बाबूजी, बहुत बीमार है वह..' रुँधे हुए स्वर में बोली–'उसका मुँह गुम हो चुका है। और जबान से कुछ नहीं बोलता। वह मुझे पास बैठा कर रोता रहता है।' और साड़ी के आँचल से अपने आँसू पोंछने लगी। फिर कहने लगी–'बाबूजी आज से बीस-बाईस वर्ष पहले हमारी शादी हुई थी। मैं दस-बारह वर्ष तक उसके साथ रही। वह मुझे हमेशा मारता-पीटता और बेइज्जत करता रहा। उसने अपनी और मेरी सारी कमाई जुए और शराब में फूँक डाली। उसने मुझे घर से निकाल बाहर किया। लेकिन मैं फिर भी उसकी होकर रही..! वह मेरी बिटिया का बाप है। आज वह बहुत बीमार है! मैं जब उसे देखती हूँ, मेरी आँखों में आँसू उमड़ आते हैं....। मैं जब भी उसके पास जाती हूँ, बस मुझे अपने पास बैठाकर रोने लगता है। वह बीमार है। सूखकर काँटा हो गया है। मैं चाहती हूँ बाबूजी उसका अच्छी तरह इलाज कराऊँ। उसे मौत के मुँह से बचा लूँ। जो मुझसे

हो सकेगा, मैं करूँगी और इसके लिए मुझे पैसे चाहिए। कुछ तो कर्जा लिया है और बाकी मैं आपसे लेने आयी हूँ !

मैं उसका मतलब समझ गया था ! मैंने उसकी पाँच महीने की जमा की हुई पूँजी, जो छत्तीस रुपये के लगभग थी, उसके हवाले कर दी। 'धन्य हो तुम नीलमणी....'

मैं मन ही मन उसकी सराहना किये बिना न रह सका।

और इसी प्रकार फिर कई सप्ताह बीत गये। पर नीलमणी को नहीं देख पाया। पता नहीं वह काम पर भी आती थी या नहीं। शायद अब उसे मुझसे रुपये गिनवाने की आवश्यकता नहीं रही थी, इसलिए इस ओर आती ही नहीं थी। एक दिन किसी दूसरे व्यक्ति के मुँह से मुझे अचानक यह पता चला कि उसके स्वामी की मृत्यु हो चुकी है। उसके सुहाग का सिन्दूर मिट चुका है। उस बूढ़े जुआरी की खातिर उसने अपने गहने तक बेच डाले थे। इतना कुछ करने के बाद भी वह उसे बचा नहीं सकी।

स्वामी की मृत्यु के पश्चात् जब वह एक हफ्ते के दिन मेरे पास आयी, मैंने विगत सारे दिनों की अपेक्षा उस दिन उसे कुछ अधिक उदास देखा। कुछ रुग्ण और पहले से भी दुर्बल ! मैले-कुचैले वस्त्रों में तो वह बिल्कुल बदली-बदली सी दिखाई देती थी। मैंने उसके स्वामी की मृत्यु पर शोक प्रकट किया। उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये..! जब मैंने सान्त्वना और सहानुभूति के दो शब्द कहे, तो उसने अपनी आँख के आँसू पोंछ डाले।

इस घटना को एक वर्ष बीत चुका था। वही दुनिया थी और वही वातावरण। नीलमणी भी वही थी। किन्तु वह जल्दी पहचान में नहीं आती थी। वह बहुत ही दुबली हो गयी थी। उसके सिर के बाल पाट की तरह सफेद हो चुके थे। हफ्ते के दिन वह मेरे

दफ्तर की खिड़की के पास आती और अपने पैसे गिनवा कर चुप-चाप लौट जाती...! उसमें अब एक बहुत बड़ा परिवर्तन आ चुका था। बुढ़ापे ने उसे पूरी तरह अपने अधिकार में ले लिया था। वह श्रान्त एवं क्लान्त अपना निढाल शरीर सँभाले, मानो रेंगती हुई सी जब मेरी खिड़की की ओर से जाने लगती, तो मैं उसे देखता रह जाता। और मैं देखता सूदखोरों का एक गिरोह उसे घेरे खड़ा है। वे उससे अपनी-अपनी रकम तलब कर रहे हैं और वह थोड़ा-थोड़ा सब का कर्जा चुका रही है।

एक बार जब वह इसी तरह वेतन लेकर मेरे पास आयी, मुझे कुछ अजीब सी सूझी। मैंने रुपये गिनकर उसे लौटाने की अपेक्षा अपने पास ही रख लिये और उससे कहा 'तुम यह रुपये घर ले जाने में सफल नहीं हो सकती नीलमणी! भूखे भेड़िये तुम्हारी ताक में हैं। तुम्हें देखते ही तुम पर टूट पड़ेंगे। अगर मुनासिब समझो तो अपना खाली लिफाफा लेती जाओ। रुपये फिर पीछे लेती जाना।' मैंने खाली लिफाफे पर अंकित अक्षरों के निशान मिटाकर वह उसे थमा दिया। वह मुँह से कुछ न बोली। क्षण भर के लिए खड़ी कुछ सोचती रही। फिर खिड़की से हटकर कुछ सहमी-सहमी सी रुकती-रुकती आगे बढ़ने लगी। सूदखोर उसकी ओर लपके और उसे चारों ओर से घेर लिये। एक राक्षस रूपी लम्बे तगड़े सूदखोर ने आगे बढ़कर लिफाफा उसके हाथों से छीन लिया। दूसरे ने बही खोलकर हिसाब बनाया—'तीन रुपये....तीन रुपये इधर लाओ....।

तीसरा बोला—'तूने दो हफ्तों से मेरा एक पैसा भी नहीं दिया। मूल तो देती नहीं, क्या सूद भी नहीं देगी...? आज कोई बहाना नहीं चलेगा। यह हुए सात रुपये तीन आने। निकाल जल्दी।'

चौथा चुप था और उसे बुरी तरह घूर रहा था ।

पहला व्यक्ति जिसने उसके हाथ से लिफाफा छीना था, उसे खाली देखकर वह फट पड़ा और अपने साथियों को वह लिफाफा दिखाता हुआ बोला—'लो देखो इस चडाल की बच्ची की करतूत । अब हमें पूरा उल्लू बनाने चली है । देखो तो सारे रुपये किसी और यार को देकर खाली लिफाफा यहाँ ले आयी ..'

वे सभी उस पर फट पड़े । सब उसे बुरा भला कह रहे थे। जो मुँह में आता बक रहे थे । एक कह रहा था—'शर्म नहीं आती । जब तुझे गर्ज थी तो हमारे तलवे चाटती थी । रोती थी, गिड़गिड़ाती थी । तब हमने कर्ज दिया था। तूने मुझे दूसरे महीने रुपये लौटा देने का वादा किया था । साल बीत गया । अब न रुपये देती है न सूद ।'

दूसरा बोला—'मैं जिस तरह रुपये देना जानता हूँ उसी तरह लेना भी जानता हूँ . याद रख कपड़े उतार लूँगा ।'

तीसरा कहने लगा—'अरी हमारा खाकर हमे ही बुद्धू बनाने चली है । बोल तनख्वाह के पैसे कहाँ छिपा रखे है.. ? खाली लिफाफा दिखाने से काम नही चलेगा। जब तक रुपये नहीं देगी, मै यहाँ से जाने नही दूँगा ।

वह चुप न रह सकी—'तुम मुझे मारो पीटो, गालियाँ दो और चाहे नगी कर दो...लेकिन..लेकिन मेरे पास रुपये नहीं हैं तो दूँ कहाँ से....?

'रुपया नहीं...रुपया नही...' वे एक स्वर मे बोले...पगार के रुपये किस खसम के हवाले कर दिये बोल...?

उसने सफाई पेश करते हुए कहा—'पगार तो सारी कम्पनी के कर्जे में कट गयी ।'

'झूठ सफेद झूठ...' वे एक स्वर में चीख उठे—'अरी शैतान की मौसी झूठ बोलती है....'

मौन खड़े चौथे व्यक्ति ने तैश मे आकर अपने हन्टर का भरपूर हाथ नीलमणी के माथे पर दे मारा और साथ ही चिल्लाया—'हरामजादी तीन महीनों से तेरा मुँह देख रहा हूँ। न मूल अदा करती है न सूद...'

नीलमणी के मुँह से एक हाय निकली और वह चकरा कर धरती पर गिरने लगी। मैं घबरा कर कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ। एक वृद्ध ने आगे बढ़कर नीलमणी को सम्भालने का यत्न किया। बाहर एक कोलाहल सा मच गया—'अरे देखो बेचारी बुढ़िया को मार डाला...मार डाला....।'

लोगो के एक छोटे से समूह ने उन लोगों को घेरे मे ले लिया। मैं आँखे फाड़े देखता रहा। रेजा का चेहरा लहूलुहान हो रहा था। जब सहारा देने वाला बूढ़ा उसे सँभाल न सका, वह निर्जीव सी नीचे गिर गयी, एक सूखे पेड़ की तरह जो तने से काट दिये जाने के बाद आन-की-आन मे धरती पर आ रहता है। वह नीचे गिर पड़ी। कुछ स्त्रियों के मुँह से एक चीत्कार निकली। मेरे सारे शरीर में एक सनसनी सी दौड़ गयी। उसके वेतन के वे पाँच रुपये और तीन आने, जो मेरे मुट्ठी मे थे, छूट कर छन से फर्श पर आ रहे। मैं आँखे फाड़े उसे देखता ही रहा—उस गरीब बुढ़िया को.. जिसके सिर, नाक, कान और मुँह से बहता हुआ खून अब धीरे-धीरे धरती में जज्ब होता जा रहा था और मृत्यु उसके सारे शरीर को शून्य करती जा रही थी.... ।

पूजा का उपहार

माणिक घूमते-घूमते एक खिलौनों की दूकान के सामने रुका, जहाँ स्त्रियों और बच्चों की एक खासी भीड़ जमा थी और दूकान से नाना प्रकार के खिलौने मोले जा रहे थे। सप्तमी के दिन की पूजा की प्रथम संध्या, उस दिन मेले की बहार देखने की थी। तरह-तरह के लोग और तरह-तरह की सूरतें, सब पर एक नया रूप था और नई सज्जा। वे बड़ी उमंग और चाव से पूजा को आए थे। यह सब उनके चेहरे देखकर पता चल जाता था। वर्ष के पश्चात् यदि जीवन की कुछ घड़ियाँ, कुछ दिन शेष रह जाएँ, तो यह दिन देखने को मिलता है। सप्तमी, अष्टमी, नवमी और फिर दशमी। जब माँ दुर्गा की पावन मूर्ति जल-प्रवाह कर दी जाती है और शेष रह जाती हैं, मन में चन्द बीते दिनों की स्मृतियाँ.. माँ अंबिके! फिर वर्ष भर के बाद वह दिन आयेगा, उन्हीं मधुर स्मृतियों की याद लिये, जिसकी चाह, जिसकी कल्पना मनुष्य को सदैव जीवित रहने के लिए उकसाती रही है.. जीओ सदा जीओ चिरंजीव रहो। तब तक जीओ, जब तक ब्रह्मांड में जल, वायु, अग्नि, आकाश और धरती है, आकाश पर तारे चमकते हैं और सूर्य से विश्व को उष्णता प्राप्त होती है। यही मानव की महत्त्वाकांक्षा है। किन्तु माँ.. चाह कर भी तो जिया नहीं जाता.. तुम तो अमर हो.. तुम्हें स्मरण करने वाले मर जाते हैं। भयंकर काल के महान अन्धकार में खो जाते हैं.. माणिक को लग रहा था, आज से एक वर्ष पहले, उसने जो कुछ और जैसा देखा था, वैसा ही अब भी है। वही पूजा-स्थल, वैसी ही एक कुशल कलाकार के हाथों की बनी हुई प्रतिमा, वही मेला, और मेले

की दूकानें तथा घूमने-फिरने वाले लोग। वह जो एक स्त्री एक खिलौने का मोल करके, शायद अपने आप को उसे खरीदने में असमर्थ पा, वापस लौटा रही थी. वह ठीक आरती जैसी लग रही थी। ऐसा लग रहा था, जैसे वह आरती, जिसे आज से कई महीने पहले उसने मृत्यु की शय्या पर बेसुध सोए देखा था, वह भी मेले में मौजूद है। और उनका बच्चा . . ? हाँ ! वह देख रहा था उस देवी का बच्चा शायद उसी खिलौने के लिये जिद कर रहा था, जिसे वह लौटा रही थी। वह देवी अपने वस्त्रों से किसी अमीर घर की स्त्री नहीं जँच रही थी। उसकी लाल पाड की साड़ी देखकर वह सोचने लगा, यदि यही साड़ी दूकान में किसी रबड़ के माडल को पहना दी जाय, तो लोगों के लिए आकर्षण बन जाती है। और यदि कोई भंगिन पहन ले तो बिल्कुल साधारण सी वस्तु बन जाती है। लेकिन किसी असाधारण स्त्री के तन पर यह श्रृंगार बन जाती है। और जब यही साड़ी आरती को पहना दी जाए, तो उसका कफ़न बन जाती है। इसी कफ़न को पहना कर उसे चिता पर रखा गया था। और जब चिता धू-धू जल रही थी, तब ऐसा लग रहा था, उसकी साड़ी के सारे रंग, उसी ज्वाला में समा गए हैं और वे लपटें अपनी लपलपाती हुई जीभें निकाले उससे कह रही हैं—मूर्ख जिस अभागिन के शौक को तूने उसके मरने के बाद पूरा किया और यह साड़ी लाकर पहनाई, उसका माथा आज माँ अम्बिके के चरणों पर झुकने से रहा। न उसके कान शंख की ध्वनि सुन सकते हैं और न ढोल, मृदंग और नगारों पर की चोट ! तुम कान लगा कर सुनो.. शायद वह रो रही है। उसका बालक भी रो रहा है··

लेकिन उस समय तो माणिक के सामने वह बालक रो रहा था, जिसकी माता ने उसे खिलौना लेकर नहीं दिया था और उसे घसीटती हुई पूजा-मंडप की ओर ले चली थी।

वह देखता रहा और सोचता रहा, हाँ पिछले वर्ष ऐसी ही पूजा आई थी। और पूजा को बीते आज सैकड़ों दिन गुजर गए। इन दिनों के बीच कितनी ही चिताएँ जली हैं और कितनी लाशें जल कर राख हुई हैं। कितनी माताओं के बच्चे जले हैं और कितने परवान चढ़े हैं। कितने दिन चढ़े और कितनी सांझें ढली हैं, और फिर न जाने आकाश से कितने तारे टूट-टूटकर धरती से मिले हैं। यह धरती अंगारों पर बसती है। जल पर तैरती है, और वायु में डालती है। सब कुछ इसीसे उत्पन्न होता है और सभी कुछ इसी में समा जाता है। फिर किसी का चिन्ह राख के सिवा और क्या रह जायगा? पिछले वर्ष आरती उससे रूठ गई थी और वह भी ठीक पूजा के अवसर पर। उसकी रूठ का केवल एक कारण था और थी उसकी नई साड़ी की मांग। पूजा, जो वर्ष भर के बाद एक त्योहार आता है, जिसमें चार दिनों तक खुशियाँ मनाई जाती हैं, नए कपड़े पहने जाते हैं और पूजा-मंडप के सामने पंडाल में, जात्रा, दर्जा' और हरिकीर्तन द्वारा मन की रसना पवित्र की जाती है, उस दिन यदि एक इच्छा, और वह भी साड़ी की इच्छा पूरी न हो सके, तो इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है?

आरती की नजरों के सामने बोस बाबू का परिवार घूमता था। बोस मोशाय ने घर के सब लोगों के लिए नए-नए कपड़े सिलवाए थे। उनकी गृहिणी ने लाल किनारों की सुनहरी रेशमी साड़ी बांधी थी। यहाँ तक कि अपनी नौकरानी को भी उन्होंने पाँच रुपए की एक नई साड़ी खरीद कर दी थी। वही साड़ी पहिनकर वह नौकरानी आरती के पास आई थी। आरती बड़े गौर से उस साड़ी के किनारे छू-छूकर देख रही थी। और उसने बोस मोशाय की बड़ी प्रशंसा की थी। और एक वह था, यानी माणिक, जो साडी तो दूर की बात, उसे ब्लाऊज का कपड़ा भी लाकर नहीं दे सका था। वह बच्चों की

तरह रूठ गई थी । रात के समय जब वह स्कूल से घर लौटा, और रात का भोजन कर रहा था, आरती पंखा झलती हुई बोली थी—"सुनते हो जी—आज सप्तमी है, और तुम अभी तक मेरे लिए साड़ी नहीं लाये । क्या बरस दिन के बाद एक साड़ी के लिए भी मुझे तुमसे कहना होगा ?"

उत्तर में उसने कहा था "क्या त्योहार और पूजा नई साड़ियों ही से मनाये जाते हैं...?"

"नही तो क्या नंगे रहकर....." उसने कहा था—"बोस परिवार को नही देखते, अभी वे कितनी सज-धज के साथ पूजा-स्थल को गए है । क्या तुम मुझे एक साड़ी भी लाकर नही दे सकते..?"

"घर की बात क्या तुमसे छिपी हुई है." दो कौर खाकर उसने कहा था—"बोस परिवार वालों के साथ हमारी क्या बराबरी वे ठहरे बड़े आदमी और हम गरीब । वे स्वयं एक कपड़े की दूकान के मालिक हैं, और मैं स्कूल का माली.. !"

आरती बिगड़कर बोली थी—"एक साड़ी के लिए इतनी बड़ी व्याख्या की क्या जरूरत है ? यह क्यों नहीं कहते कि मैं साड़ी लाकर देना नही चाहता...!"

"नहीं, मै चाहता तो सब कुछ हूँ, पगली....."

उसने कहा था—"लेकिन...माँ तुम्हारे लिए रुपये बटोर रही है....." वह कुछ रुककर बोला था—"तुम माँ बनने वाली हो. !"

आरती ने ढलका हुआ आँचल अपने माथे पर खींच लिया था—"तुम्हें बहाने बहुत आते है....!" कहकर वह उसके पास से उठकर चली गई थी..लेकिन कोठरी से बाहर निकलने से पहले वह एक बार फिर बोली थी—

"देखो जी, बहाने नही चलेंगे । खाना खाकर मेरे लिए बस

अभी एक साड़ी ले आओ। कल नई साड़ी पहिनकर ही मेरे लिए पूजा-मंडप में जाना संभव हो सकेगा। हां समझ लो.....!"

वह उसकी ओर देखकर मुस्करा दिया था। माँ आँगन में चारपाई पर बैठी ऊँघ रही थी। वह सोचने लगा था, काश, माँ बहू के ये शब्द सुने।

भोजन के बाद जब वह माँ के निकट चारपाई पर बैठा, बीड़ी के कश खींच रहा था, वह उससे बोला था—

"माँ आरती नई साड़ी के लिए जिद कर रही है।"

माँ ऊँघती-ऊँघती बोली थी—"तो ला क्यों नहीं देते? वर्ष भर बाद त्योहार आया है, क्या वह पुरानी साड़ी पहिनकर मंडप में जायगी....?"

"लेकिन माँ...." वह कुछ कहता-कहता रुक-सा गया था।

माँ कुछ बिगड़कर बोली थी—"तू तो निरा मूर्ख है। जवान लड़कियों को इसी उम्र में तो खाने-पहनने का शौक होता है! और फिर क्या ये दिन बार-बार आते है? भला यह भी कोई पूछने की बात है....!"

वह बोला था—"तो लाओ माँ, दस रुपये लाओ, मैं अभी एक अच्छी सी साड़ी लाता हूँ....!"

"मैं रुपये कहाँ से लाऊँ?" माँ बोली थी—"जाओ उधार ले आओ, पैसे फिर पीछे दे देना...!"

"पूजा के दिनों में उधार कौन देता है माँ...?" वह मुँह बनाता हुआ बोला था—"दुगने दाम लगेंगे....उन रुपयों में से कुछ दे दो न, जो मैंने परसों तुम्हें दिये थे।"

"नहीं..." माँ ने घूरकर उसकी ओर देखा—"उन रुपयों की सख्त जरूरत है..." फिर तनिक गुस्से में बोली थी "तेरी मूर्खता

की हद हो गई । बहू को देखता नही तू, कौड़ी-कौड़ी की जरूरत पड़ेगी। दस पचास मे क्या बनेगा....यदि मेरी बहू का पुत्र जन्मा तो मै...."

और माँ की दृष्टि ऊपर आकाश की ओर उठ गई थी। वह प्रभु से विनती करने लगी थी—"हे प्रभू ! बहू को चाद जैसे मुखड़े वाला शिशु दे। वह दूधों नहाये पूतो फले.....!' तब माणिक माँ के निकट से हटकर अन्दर कोठरी मे आ गया था। आरती द्वार की ओट खड़ी थी। जब वह धोती कसकर बाहर जाने की तैयारी कर रहा था, आरती ने उससे पूछा था...."कहाँ चले....?"

"तुम्हारे लिए साड़ी लाने...." वह मुस्कराता हुआ बोला था। उसे आशा थी, आरती यह सुनकर बहुत खुश हो जायगी और वह भी मुस्करा देगी। पर न तो वह मुस्कराई और न उसके चेहरे पर प्रसन्नता का कोई भाव उभरा। बल्कि उसने कुछ निराश-पूर्ण शब्दों में पूछा—"पैसे है....?"

"नही"... उसने कहा था—"उधार लेता आऊँगा..."

"नहीं....!'" आरती उन्ही स्वरो में बोली—"मुझे साड़ी नही चाहिये "

वह अवाक् सा उसके मुँह की ओर देखने लगा था। यह परिवर्तन कैसा....? अभी तो यह साड़ी के लिए ज़िद कर रही थी और अब इन्कार करने लगी। उसकी समझ में कुछ भी न आया। सहमा आरती के चेहरे पर मुस्कान खिल उठी थी। और उसके देखते-देखते चारपाई पर अपने दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर बैठ गई थी।

लज्जा का वह आवरण उसके चेहरे पर बहुत सुन्दर लग रहा था। वह मौन कोठरी से बाहर निकल आया था।

और माणिक धीरे-धीरे क़दम उठाता हुआ आगे बढ़ रहा था। वह महिला उस शिशु को घसीटे लिए जा रही थी। बच्चा अड़ियल टट्टू की तरह अड़ रहा था। निदान उस महिला ने क्रोध में आकर दो तीन थप्पड़ उस शिशु के मुँह और पीठ पर जड़ दिये और बड़बड़ाती हुई आगे बढ़ने लगी। बच्चा रोता हुआ अपने कोमल हाथों की मुट्ठी से आँखें मलता हुआ माँ के पीछे धीरे-धीरे चल रहा था। और उस बच्चे के कुछ पीछे माणिक। उसे उस अबोध बालक पर बड़ी दया आ रही थी। उसे उस एक बच्चे के रोने के स्वरों में सैकड़ों बच्चों के रोने और बिलखने की आवाज़ें सुनाई दे रही थी। लेकिन उस मेले-ठेले में, उसके अतिरिक्त उस बच्चे की चीत्कार सुननेवाला और था ही कौन...?

उसे याद है यही सप्तमी का दिन था, जब आरती पूजा में शामिल नहीं हुई थी। तब शायद उसे नई साड़ी पा न सकने का दुःख नहीं था। वास्तव में वह उभरा हुआ पेट लेकर लोगों के सामने आना उचित नहीं समझती थी। उसके बदले पूजा माँ कर आई थी। वह पूजा के चार दिनों में, एक दिन भी पूजा-पंडाल में नहीं गई थी। बोस बाबू के यहाँ भी पूजा बड़ी धूमधाम से हो रही थी, वह उसमें भी शामिल नहीं हुई थी, और जब दशमी के दिन प्रतिमा को विसर्जन के लिये ले जाया जा रहा था, उसने घर के द्वार पर खड़े होकर, माँ अम्बिके को प्रणाम किया था—"माँ जगदीश्वरी तुम्हें शत-शत प्रणाम !"

पूजा के दिन आये और चले गए। पूजा के दिन आते हैं और चले जाते हैं....! प्रतिमाएँ बनती हैं, और उनका विसर्जन होता है। खुशियाँ मनाई जाती हैं और नए कपड़े पहने जाते हैं। और इस प्रकार वर्ष भर का त्योहार समाप्त होता है। किन्तु आरती के भाग्य में शायद यह सब कुछ नहीं था। त्योहार आया

और चला गया परन्तु उसने नए कपड़े नहीं पहने। नई साड़ी नहीं बाँधी, न उसने श्रीमती बोस की तरह घर में पूजा करवाई। वह स्कूल के एक माली की पत्नी थी। शायद उसे यह सब शोभा नहीं देता था।

माणिक ने देखा, वह बालक अपनी माँ से बहुत पीछे छूट गया था। माँ तो एक गुस्से में, और दूसरी बातों में खोए रहने के कारण उसे बिलकुल भूल गई थी। बालक अपनी जिद में एक छोटी सी नाली के पुल के पास, जहाँ कुछ बेलून वाले बेलून फुलाए बेच रहे थे, खड़ा हो गया, और पैर पटक-पटक कर रोने लगा पर उसकी माँ ने उसकी ओर मुड़ कर देखा तक नहीं और पूजा-मंडप की ओर बढ़ती गई, जहाँ हजारों आदमियों की भीड़ थी। वह भी उसमें विलीन हो गई। बालक और अधिक जोरों से रोने लगा, माणिक चलता-चलता रुक गया था। वह खड़ा देखता रहा, अबोध बालक को, जो जिद कर रहा था। उसे याद आया, विजयदशमी के कुछ दिनों बाद, और काली पूजा के दिन आरती के दिन पूरे हो गए थे। उसे 'सेवा-मातृ-सदन' में भरती करवा दिया गया था वहाँ उसके एक पुत्र जन्मा था। ठीक एक ऐसा ही बालक। उसका चेहरा. . वह तो याद नहीं, पर उसका रंग ठीक इसी बालक जैसा था। किन्तु उस बालक के जन्मते ही, आरती. . आरती ने आँखें मूँद ली थीं। वह अपने जनमे हुए शिशु को कभी अपनी आँखों से नहीं देख सकी थी। उसने शायद मृत्यु की आकृति देख ली थी। फिर पीछे वह बच्चा भी चल बसा था। इस बच्चे की तरह उसे जिद करने का मौका नहीं मिला था। अड़कर रोया नहीं था, और उसे याद है, काली पूजा के दिन उसने आरती को कफ़न के लिए एक नई साड़ी लाकर जरूर दी थी। काली पूजा के दिन उसने नई साड़ी पहनी थी। उसकी माँग में सिन्दूर भरा

गया था । उसके पैरों में आलता लगाई गई थी। चिता पर जब उसका शव रखा गया था, उसके प्राणहीन बच्चे को भी उसके साथ लिटा दिया गया था । तब वह कुछ मुस्कराती सी दिखाई दे रही थी । स्नेह और ममता से भरी उसी माता के समान जो अपने शिशु के प्यार में मुग्ध हो संतोष-पूर्वक आँखें मूंद ले । उसने तो शिशु के प्यार में सब को भुला दिया था ।

बच्चा बिलख-बिलख कर रो रहा था । अब माणिक से न रहा गया, आगे बढ़कर उसने उसे गोद में उठा लिया। बड़े प्यार से पूछा—"खोखा क्या चाहिये ? यह बेलुन लोगे बेलुन .." और उसने बेलुन वाले से चार बेलुन, जो एक साथ धागे में बंधे हुए थे, दे देने को कहा । बेलुन वाले ने बेलुन दे दिये । उसका रोना थम गया । किन्तु वह आश्चर्य-मिश्रित दृष्टि से माणिक की ओर देखने लगा । जैसे अपनी मौन भाषा में पूछ रहा हो—"तुम कौन हो दादा.. ?

माणिक मुस्करा दिया । उसका विश्वास पा लेने के लिए वह और भी मुस्कराता हुआ बोला—"घोड़ा लोगे घोड़ा....चलो तुम्हें घोड़ा भी ले दूँ..चलो हम लोग वह काठ का घोड़ा ले..वह जो सामने वाली दूकान में मिलता है"—उसने हाथ से संकेत किया और उसी दूकान की ओर ले चला, जहाँ उसने घोड़ा लेने की ज़िद की थी । वहाँ पहुँच कर उसने दूकान वाले से काठ का वही घोड़ा माँगा, और जितना मूल्य उसने कहा, चुका दिया। बालक काठ का घोड़ा पाकर खिल उठा । वह माणिक के मुँह की ओर देख देखकर मुस्कराता हुआ अपनी प्रसन्नता प्रकट करता रहा । माणिक को भी जैसे कोई खोई हुई वस्तु मिल गई हो, खोया हुआ प्यार मिल गया हो, उसे आरती मिल गई हो, अपना शिशु मिल गया हो, पूजा का सुन्दर और बहुमूल्य उपहार मिला हो, उसकी सारी लुटी हुई खुशियाँ लौट आई हों । वह हँसने लगा। बच्चे

मे लाड़-प्यार की बातें करने लगा । उसने उसे कागज का रंगीन चश्मा भी खरीद दिया । वह उसे बारी-बारी से सारी दूकानों पर ले जाकर नाना प्रकार की वस्तुएँ दिखाने लगा । बालक ने कुछ एक वस्तुओं की ओर उँगली उठाई और उसने खरीद दीं । बालक के पास इतने अधिक खिलौने हो गए थे कि वह उन्हें दोनों हाथों से सम्भालने मे असमर्थ था । लेकिन माणिक उसे इतने खिलौने ले देने के बाद भी सन्तुष्ट नही था, क्योंकि खिलौना उसने स्वयं पा लिया था, उसके सामने लकड़ी और मिट्टी के खिलौनों का कोई मूल्य नही था । उसे पाकर वह अपने आपको भूल गया था । वह भूल गया था कि वह माणिक है, एक स्कूल का माली, और वह लड़का जिसे उसने गोद में उठा रखा है, आरती की कोख से नही जन्मा । वह भूल गया था कि पूजा-स्थल मे वह एक दर्शक के रूप में आया है । वहाँ शायद उस जैसे और सैकड़ों ही लोग उसके मन की सी वेदना लिए घूम रहे होंगे । वहाँ उस बालक की तरह अन्य सैकड़ों बालक जिद करते है और माओं से रूठ कर एक जगह अड़कर खड़े रहते हैं वह भूल गया था कि पराये बच्चे से इतना अधिक मोह अच्छा नही है । वह बच्चे को गोद में लिए लगभग पौन घंटे तक इधर-उधर घूमता रहा । उसे किसी बात का ख्याल ही नही रहा । वह यह भी भूल गया था कि उसकी माँ उसे तलाश कर रही होगी और परेशान होगी । वह खुद भी बच्चा बना घूमता रहा । जब वह एक अंग्रेजी मिठाई की दूकान के सामने खड़ा, उस के लिए लेमनजूस ले रहा था, किसी ने पीछे से उसका बाजू कसकर पकड़ लिया । उसने पीछे मुड़कर देखा, वहाँ पूजा-स्थल के कुछ कर्मचारी, दो पुलिस कान्सटेबल और कुछ तमाशबीन खड़े उसे घूर रहे थे । उस बालक की माँ भी कुछ परेशान सी खड़ी तेज साँसे ले रही थी । "यही है मेरा बच्चा . . यही है मेरा बच्चा . ." कहती हुई

वह शीघ्रता से आगे बढ़ी, और बच्चे को उसके हाथ में छीन लिया। उसने माणिक की मोल ले कर दी हुई वस्तुएँ बच्चे के हाथ से छीन कर नीचे फेंक दी। उसे छाती से चिमटा लिया। माणिक अवाक् सब कुछ देखता रहा। प्रथम इसके कि वह मुँह से कुछ बोले, किसी ने 'ढप' से एक घूँसा उसकी कनपट्टी पर दे मारा—"साला लड़का चुराता है.." फिर दनादन कई हाथ उस पर पड़े—"मारो साले को ..जान से मार डालो....इसकी आँखे फोड़ दो.." हर ओर से यही आवाजें उठने लगी। उस पर हाथ-लात, घूँसे, थप्पड़, यहाँ तक कि जूतों का भी प्रहार होने लगा। बड़ी कठिनाईयों से पुलिस वालों ने सब को रोका। तब तक माणिक का काफी मार पड़ चुकी थी। उसकी नाक से खून बह रहा था। लोग कह रहे थे—"इन्ही चोर उच्चकों ने ही तो सारे नगर में आतंक फैला रखा है। आए दिन बच्चे चोरी जा रहे हैं। इसे छोड़ना नहीं चाहिये, थाने ले चलो...."सब ने हाँ में हाँ मिलाई। कुछ हाथ फिर प्रहार के लिए उठे। कान्सटेबल ने सब को रोका। 'मारो-मारो' का स्वर गूँजता ही रहा। किन्तु माणिक मौन था। वह मुँह से कुछ नही बोल रहा था। उसका पुराना खाकी रंग का कुर्ता फट गया था। उस कमीज पर उसकी नाक से बहने वाले खून के अनेकों धब्बे पड़ गए थे। कान्सटेबल उसे वहाँ से ले चले। किन्तु ठीक उसी समय एक वृद्ध सज्जन आगे बढ़े और बोले—"अरे माणिक, यह तुझे क्या हुआ ...?"

माणिक मौन रहा। लोग बोल उठे.. "अजी यह पाजी, बच्चा फुसलाकर ले जाने के दाँव में था। हम लोगों ने ऐन मौके पर पकड़ कर इसकी खूब मरम्मत की है।" वृद्ध सज्जन बोले—"कैसा बच्चा? किसका बच्चा...!" ठीक उसी समय वह महिला बालक को लिए सामने आई। बोली—"बाबा, यही, अपना सरोज। इसे ही यह

कलनुँहा फुसला कर लिए जा रहा था !"

"अरी बहू तुम.. !" वृद्ध सज्जन के मुख से निकला। एक बार माणिक की ओर देखा। कुछ क्षण पश्चात बोले—"नही बहू, यह कैसे हो सकता है ? माणिक तो अपना आदमी है, अपने स्कूल का माली है। यह तो एक दो बार हमारे घर भी आ चुका है। क्या तूने इसे पहचाना नही !"

महिला फटी-फटी आँखों से माणिक के लहूलुहान चेहरे की ओर देखने लगी। उसके मुँह से निकला—"माणिक... माली..." और माणिक बेचारा फूट-फूट कर रोने लगा। सिपाही ने उसका हाथ छोड दिया। लोग धीरे-धीरे उस जगह से खिसकने लगे और भीड़ मे गुम हो गये। वृद्ध सज्जन माणिक को साथ लिए मेले-ठेले से बाहर निकल आये। वह तब भी रो रहा था... बच्चों की तरह बिलख-बिलख कर, जिसका रहस्य शायद वहाँ कोई नही समझ सकता था.. !

बवंडर

वह अनमना सा घर से बाहर निकल आया। तब संध्या ढलने लगी थी, और सड़क पर राहगीरों की भीड़ बढ़ चली थी। उसके मोहल्ले की कुछ स्त्रियाँ और पुरुष, लड़के और लड़कियाँ, सज-धज कर सैर के लिए घर से निकल पड़े थे। कुछ देहाती माथे पर मोटरी रखे, हाथों में डंडा थामे अपने-अपने गाँव की ओर बढ़े चले जा रहे थे। शौक़ीनों से लदे तांगों का रुख नहर की ओर था। कुछ घुड़-सवार, घोड़ों की बगल में दूध से भरी गागरें लादे हिचकोले खाते नगर की ओर आ रहे थे। घर से निकलते ही उसने एक साईकिल की दूकान के निकट खड़े होकर उस बहती हुई सड़क का हल्का-सा निरीक्षण किया। फिर उसकी दृष्टि आड़ू और नाशपातियों के बाग़ की ओर घूम गयी; जहाँ डूबते हुए सूर्य की आरक्त आभा, क्षितिज का आँचल बनकर लहरा रही थी और पक्षियों का एक समूह शोर मचाता हुआ पेड़ों पर चक्कर काट रहा था। रह-रह कर वहाँ 'ठप-ठप' का एक कर्कश नाद भी गूँज उठता था, जो पक्षियों को डराने के लिए लकड़ी की चौखटों से उत्पन्न किया जा रहा था। वह कुछ देर वहीं खड़ा रहा। 'शून्य और नीरव',—वह मन-ही-मन बोला—'कहीं जीवन के चिह्न दिखाई नहीं पड़ते। सब ओर मानो मृत्यु की भयप्रद छाया फैली हुई है...! सब कुछ अशान्त और विरक्त है।"

दूकान वाले ने उसके बैठने के लिए बाहर एक कुर्सी ला रखी। उसने दूकान वाले से कहा, "धन्यवाद, मैं जरा टहलने जा रहा हूँ।" और धीरे-धीरे क़दम बढ़ाता हुआ वह नहर की ओर जाने लगा।

एक ताँगे वाले ने निकट आ कर पूछा, "नहर चलिएगा हुज़ूर ?"

उसने कुछ बेपरवाही से जवाब दिया. "नहीं !" ताँगे वाला घोड़े को चाबुक लगा आगे बढ गया। धीरे-धीरे आगे बढते हुए, कुछ क्षणो के लिए उसे लगा, जैसे सड़क की इस रौनक मे एक जिन्दगी, एक बहार है। कहीं रंगीन रेशमी साड़ियो की, और कही गुलाबी दोपट्टों की। लोगों की बेसुध और मस्त हँसी मे जीवन है और मुस्कानो में जीवन की आभा।

किन्तु शीघ्र ही उसे ऐसा लगा, जैसे इन पर भी धीरे-धीरे छाने वाले अँधकार की तरह निराशा और मृत्यु का आवरण छाता चला जा रहा है। रंगों में बहार नहीं, अट्टहासों में जीवन नहीं, मुस्कानों मे मधुरता नही। कहीं कुछ नहीं, केवल नीरवता है और शून्यता......।

सामने सड़क के किनारे खोजों की हट्टियां थी। वहाँ सब्जी-तरकारी बिक रही थी। लोग मोल-तोल कर रहे थे और जरूरत की चीजे खरीद रहे थे। सहसा उसकी नजरें गली के फाटक पर लगी एक साइनबोर्ड की तरफ घूम गयी। उस पर लिखा था—

"अतरसिंह वसीकानवीस, बाजार हरिपुरा... ."

यह साइनबोर्ड पढ़ते ही अतरसिंह वसीकानवीस का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूम गया। वह सोचने लगा, बेचारे अतरसिंह को काल ग्रस चुका है। एक दिन इसी अतरसिंह वसीकानवीस ने उसे सुरजीत द्वारा हस्ताक्षर किये गये फारखती के कागज सौंपते हुए कहा था, "लीजिए, यह है आपकी अमानत, इसे संभाल कर रखिएगा। भविष्य में यह 'फारखती' आप के बहुत काम आएगी" फिर कुछ रुक कर वह बोला था, "मिस्टर करतार ! क्या मैं एक मित्र के नाते आप से यह पूछ सकता हूँ कि आपने मिसेज सुरजीत से, या उन्होंने आपसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद क्यो कर लिया ?"

इसके जवाब में शायद उस दिन उसने केवल इतना ही कहा था, "भाई अतरसिंह हमारा मिलन अचानक एक घटना से हुआ था, और एक दूसरी घटना ने हमें अलग कर दिया। इसके अतिरिक्त और कुछ मुझे याद नहीं।"

"हाँ, अतरसिंह मेरी जिन्दगी के कुछ रहस्यों से परिचित था। इसके हाथों ने मेरे जीवन की धारा का रुख मोड़ने का प्रयत्न किया था। लेकिन इसका रुख किसी और ही तरफ फिर गया। जीवन की यह धारा बहती-बहती आज बहुत दूर निकल गयी है।" वह सड़क पर बढ़ता-बढ़ता सोचने लगा, "अतरसिंह...सुरजीत और न जाने कितने लोग कितने पीछे रह गये हैं! स्वयं उनके जीवन की धाराएं विभिन्न रूपों में कई ओर बह गयी हैं। सब-कुछ बदल चुका है..और जो शेष रह गया है, वह भी बदल रहा है! यदि कुछ नहीं बदला है, तो शायद यह सड़क नहीं बदली...!" उसकी नजरें सड़क पर गड़ गयीं—"न तो इस सड़क का रंग बदला है और न ही इसका रुख!" उसका जी चाहा, वह तेजी से कदम बढ़ाता हुआ इस सड़क को पार कर जाए। किन्तु तेज चलने में फायदा? उसकी मंजिल तो केवल नहर तक है। उसके आगे यह काली सड़क अपना रंग और रूप खो कर सरसों के पीले-पीले खेतों में विलीन हो जाती है। हाँ, यदि वह तेज चले तो सड़क के किनारे खड़े इन घरों को जल्दी पार कर सकता है। इन घरों पर मृत्यु की छाया फैली हुई है। इन पर खंडहर की-सी वीरानी छायी हुई है। किसी घर से कोई हँसी की आवाज आती सुनाई नहीं देती, न हारमोनियम, न सितार, न गाने की स्वर-लहरी! बस, मौन छाया हुआ है। उसके कदम तेज उठने लगे। सड़क यहाँ कुछ तंग थी और उसे राहगीरों से बच कर चलना पड़ता था।

सड़क के इस संकीर्ण भाग को पार कर वह बस्ती से बाहर निकल

आया। यहाँ सड़क के दायीं ओर सामने एक कब्रिस्तान था और उससे परे आलूचों का बाग। बायीं ओर सड़क से एक फर्लांग हट कर नाशपातियों का बाग था, जिसकी शृंखला नहर तक फैलती चली गयी थी। बाग के एक किनारे, एक रिटायर्ड मेजर साहब की कोठी थी। कोठी के बाहर एक कार खड़ी थी, जिसमें कोई सुन्दरी बैठी थी, और एक युवक उसकी ओर झुका, कानाफूसी के अन्दाज़ में, उससे कुछ बातें कर रहा था। एक बार उस ओर देख कर उसने अपनी नजरें कब्रिस्तान की ओर घुमा ली। कब्रिस्तान के गेट के सामने कुछ गधे धूल पर लोट रहे थे। धूल का हल्का-सा गुब्बार ऊपर उठ रहा था। कब्रिस्तान का साईं विरक्त आकृति में जुल्फें फैलाए, मुँह में अलगोज़ा लिये हीर के करुण स्वर फूँक रहा था। उसका जी चाहा, कुछ क्षणों के लिए वहाँ खड़ा हो जाए। किन्तु पग रोके न रुके। अतरसिंह वसीकानवीस का चेहरा फिर उसकी आँखों के सामने घूम गया। साथ ही उसके वे प्रश्न उसे स्मरण हो आये, जिनका जवाब उसने उस दिन उसे नहीं दिया था। सुरजीत के मिलन को उसने केवल एक घटना बताया था और उससे सम्बन्ध-विच्छेद को एक दूसरी घटना। किन्तु आज वह अतरसिंह को सारी कहानी सुना सकता है।

और वह मन ही मन अतीत की बीती घटनाओं को स्मरण कर उन्हें कहानी का रूप देने लगा? उसके पाँव धीमे उठने लगे।

वह भावों के मूक स्वर में जैसे अतरसिंह से कहने लगा, "भाई अतरसिंह, सुरजीत से मेरी पहली भेंट आज से लगभग पाँच वर्ष पहले दिल्ली में हुई थी। उस दिल्ली में, जो भारत के पुराने इतिहास के समय की दिल्ली नहीं थी। पठानों के शासन-काल की दिल्ली नहीं थी। मुगलों और साम्राज्यी फिरंगियों के समय की दिल्ली नहीं थी। वह दिल्ली स्वतन्त्रता के बाद की शरणार्थियों की दिल्ली थी। मेरी और सुरजीत की दिल्ली थी। उससे मेरी सबसे पहली भेंट मेरे एक

मित्र मलहोत्रा के यहाँ एक पार्टी में हुई थी । तभी मैंने जाना था कि वह देवी लाहौर से यहाँ आयी है, और एक स्थानीय गर्ल्स स्कूल में मिस्ट्रेस है । उसका एक छोटा बच्चा है, और आज वह सारे परिवार वालों से सदा के लिए बिछुड़ कर अकेली रहती है ।

"सचमुच संसार में उसका अपना कोई नहीं था । दुनिया उसे एकान्त और अकेली देख कर चुप नहीं रह पाती थी । जितने मुँह थे, उतनी बातें । बातें सुनते-सुनते उसके कान पक चुके थे । किन्तु उसकी निष्ठा और साहस में कोई अन्तर नहीं आया था । एक दिन वह भयावह तूफानों में कली की भाँति खिलने की शक्ति रखती थी । तब आगे चल कर लोगों की गन्दी साँसों से उसके आत्म-गौरव का सौरभ कैसे नष्ट हो जाता? वह एक शिक्षित नारी थी । जो पैसे उसे मिलते थे, उनसे किसी प्रकार उस कठिन समय में उसका निर्वाह होता जा रहा था । शायद भविष्य की कोई सुखद कल्पना, और उससे प्राप्त सन्तोष के कारण वह इस जीवन-पथ पर विचलित नहीं हो पाती थी । अत. वह अपने आप में खुश दिखाई देती । हँसती, गाती और मुस्कराती । कमल की भाँति उसका खिला हुआ चेहरा देख कर मन में स्नेह और करुणा उपजती थी । न जाने क्यों मेरे मन में एक विश्वास पलने लगा, जैसे मेरा और उसका, युगों का एक पुराना सम्बन्ध है, और मेरी तथा उसके जीवन की विभिन्न घटनाओं ने हमें मिलाया है । उसे भी कुछ ऐसा ही विश्वास होने लगा था । तब दो भावनाओं ने मिलकर एक नया सम्बन्ध निर्माण किया । हम दोनों एक बन्धन में बँध गये, यानी हमारा विवाह हो गया । वैधव्य की मनहूस छाया उसके सिर से टल गयी । वह प्यार-भरी चाँदनी में, मानो सरोवर के पवित्र जल में शतदल की भाँति खिल उठी । मैं भँवरा बन कर झूम उठा । तब जीवन कितना सुन्दर और सुन्दर बन गया था, अतरसिंह बसीकानवीस यह मेरे मन से पूछो!"

आया। यहाँ सड़क के दायीं ओर सामने एक कब्रिस्तान था और उसके परे आलूचों का बाग। बायीं ओर सड़क से एक फर्लांग हट कर नाशपातियों का बाग था, जिसकी शृंखला नहर तक फैलती चली गयी थी। बाग के एक किनारे, एक रिटायर्ड मेजर साहब की कोठी थी। कोठी के बाहर एक कार खड़ी थी, जिसमें कोई सुन्दरी बैठी थी, और एक युवक उसकी ओर झुका, कानाफूसी के अन्दाज़ में, उससे कुछ बातें कर रहा था। एक बार उस ओर देख कर उसने अपनी नजरें कब्रिस्तान की ओर घुमा ली। कब्रिस्तान के गेट के सामने कुछ गधे धूल पर लोट रहे थे। धूल का हल्का-सा गुब्बार ऊपर उठ रहा था। कब्रिस्तान का साईं विरक्त आकृति में जुल्फें फैलाए, मुँह में अलगोज़ा लिये हीर के करुण स्वर फूँक रहा था। उसका जी चाहा, कुछ क्षणों के लिए वहाँ खड़ा हो जाए। किन्तु पग रोके न रुके। अतरसिंह बसीकानवीस का चेहरा फिर उसकी आँखों के सामने घूम गया। साथ ही उसके वे प्रश्न उसे स्मरण हो आये, जिनका जवाब उसने उस दिन उसे नहीं दिया था। सुरजीत के मिलन को उसने केवल एक घटना बताया था और उससे सम्बन्ध-विच्छेद को एक दूसरी घटना। किन्तु आज वह अतरसिंह को सारी कहानी सुना सकता है।

और वह मन ही मन अतीत की बीती घटनाओं को स्मरण कर उन्हें कहानी का रूप देने लगा? उसके पाँव धीमे उठने लगे।

वह भावों के मूक स्वर में जैसे अतरसिंह से कहने लगा, "भाई अतरसिंह, सुरजीत से मेरी पहली भेंट आज से लगभग पाँच वर्ष पहले दिल्ली में हुई थी। उस दिल्ली में, जो भारत के पुराने इतिहास के समय की दिल्ली नहीं थी। पठानों के शासन-काल की दिल्ली नहीं थी। मुगलों और साम्राज्यी फिरंगियों के समय की दिल्ली नहीं थी। वह दिल्ली स्वतन्त्रता के बाद की शरणार्थियों की दिल्ली थी। मेरी और सुरजीत की दिल्ली थी। उससे मेरी सबसे पहली भेंट मेरे एक

मित्र मलहोत्रा के यहाँ एक पार्टी में हुई थी । तभी मैंने जाना था कि वह देवी लाहौर से यहाँ आयी है, और एक स्थानीय गर्ल्स स्कूल में मिस्ट्रेस है । उसका एक छोटा बच्चा है, और आज वह सारे परिवार वालों से सदा के लिए बिछुड़ कर अकेली रहती है ।

"सचमुच संसार में उसका अपना कोई नहीं था । दुनिया उसे एकान्त और अकेली देख कर चुप नहीं रह पाती थी । जितने मुँह थे, उतनी बातें । बातें सुनते-सुनते उसके कान पक चुके थे । किन्तु उसकी निष्ठा और साहस में कोई अन्तर नहीं आया था । एक दिन वह भयावह तूफानों में कली की भाँति खिलने की शक्ति रखती थी । तब आगे चल कर लोगों की गन्दी साँसों से उसके आत्म-गौरव का सौरभ कैसे नष्ट हो जाता ? वह एक शिक्षित नारी थी । जो पैसे उसे मिलते थे, उनसे किसी प्रकार उस कठिन समय में उसका निर्वाह होता जा रहा था । शायद भविष्य की कोई सुखद कल्पना, और उससे प्राप्त सन्तोष के कारण वह इस जीवन-पथ पर विचलित नहीं हो पाती थी । अतः वह अपने आप में खुश दिखाई देती । हँसती, गाती और मुस्कराती । कमल की भाँति उसका खिला हुआ चेहरा देख कर मन में स्नेह और करुणा उपजती थी । न जाने क्यों मेरे मन में एक विश्वास पलने लगा, जैसे मेरा और उसका, युगों का एक पुराना सम्बन्ध है, और मेरी तथा उसके जीवन की विभिन्न घटनाओं ने हमें मिलाया है । उसे भी कुछ ऐसा ही विश्वास होने लगा था । तब दो भावनाओं ने मिलकर एक नया सम्बन्ध निर्माण किया । हम दोनों एक बन्धन में बँध गये, मानों हमारा विवाह हो गया । वैधव्य की मनहूस छाया उसके सिर से टल गयी । वह प्यार-भरी चाँदनी में, मानो सरोवर के पवित्र जल में शतदल की भाँति खिल उठी । मैं भँवरा बन कर झूम उठा । तब जीवन कितना सुखद और सुन्दर बन गया था, अतरसिंह वसीकानवीस यह मेरे मन से पूछो !"

उसके निकट से एक ताँगा खड़खड़ाता हुआ आगे निकल गया। वह विचारों मे खोया-खोया-सा चौंक उठा। पुनः उसकी दृष्टि ताँगे मे बैठी एक नववधू और उसके पति को निहारती-निहारती, सड़क के किनारे बिखरी हुई धूल को निहारने लगी...और उसके कदम धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। अतरसिंह की छाया मानो उसके साथ ही चल रही थी। "हाँ तो भाई बसीकानवीस, मेरे इस विवाह मे मेरे घर के लोग मुझसे पूर्णत सहमत नही थे। मेरी जिद पर उन्होंने इस विवाह की अनुमति दे दी थी। इस विवाह के बाद तो उनकी उपेक्षा और विरोध का अन्त हो जाना चाहिए था, क्योंकि जिसके प्रति उन्हें विरोध था, अब तो वह भी इस घर की देवी बन चुकी थी और हमारे परिवार का एक अंग भी। मैं जानता था, जिससे मैंने विवाह किया है, वह एक विधवा स्त्री है। उसका एक बच्चा है। यदि मैं चाहता तो मेरा विवाह किसी क्वाँरी और धनी घर की लड़की से हो सकता था, जहाँ मेरा काफी सम्मान होता, दहेज मिलता, और न जाने क्या कुछ जो कि विवाह के समय कन्या-पक्ष की ओर से वर-पक्ष को दिया जाता है। पर यहाँ तो केवल मोह, प्यार और स्नेह ही मिला था। जिसके सामने मैं संसार-भर की माया को तुच्छ समझता था। मुझे सुरजीत जितनी प्यारी थी, उतनी ही अपनी जिद और उतना ही अपना विश्वास!

"भाई अतरसिंह, हमारा जीवन एक पारिवारिक गाड़ी के दो पहिये बन कर आगे बढ़ने लगा और जैसे-तैसे तीन महीने बीत गये।

"तीन महीनों का पारिवारिक जीवन मे क्या महत्व है। ये तो एक पल के समान बीत गये। तीन महीनों मे तो सन्तोष और आनन्द का जीवन केवल आँख झपकता है। किन्तु मुझे ऐसा लगा, जैसे सुरजीत तो इन तीन महीनो मे हँस-गा कर, फिर जैसे थक भी गयी। थक कर सो भी गयी। अब न उसके ओठों पर गीत थे

और न हँसी । उसकी आँखों में केवल एक निराशा छाई दिखाई देती थी। आखिर इसे हो क्या गया है, मैं परेशान होकर सोचने लगा । पर मेरी समझ में कुछ भी न आया ।

"एक दिन मैंने उससे कुछ पूछने का प्रयत्न किया । वह चुप रही । फिर मैंने एक दूसरे बहाने से कुछ जानना चाहा और दूसरे दिन उससे कहा, 'जीत, आजकल तुम बहुत उदास रहती हो और कुछ परेशान भी, आखिर बात क्या है ? देखो, यह स्कूल में पढ़ाने का धन्धा भी तुमने बेकार अपने सिर ले रखा है। इसे छोड़ ही दो, तो अच्छा है। उससे तुम्हारी चिंताएँ बढ़ती हैं । स्वास्थ्य भी खराब होता है ।"

वह गहरी साँस ले कर बोली, 'मैं बच्चों में रह कर कैसे परेशान हो सकती हूँ, सरदार जी ! कभी मैं उनके बीच रह कर और उनकी भोली-भोली बातें सुनकर अपने दुखों को भूलने का यत्न किया करती थी, आज वे मेरे कष्ट का कारण कैसे बन सकते हैं ?'

'लेकिन तुम इतनी खोयी-खोयी-सी क्यों रहती हो ?'

'नही तो....' वह ज़रा रुक कर बोली, 'यह तो आपका भ्रम है ।'

"मैं सुन कर चुप रह गया। किन्तु मन-ही-मन बोला, 'सुरजीत तुम मुझसे बहुत बड़ा झूठ बोल रही हो !"

"उस दिन रात के समय माँ ने मुझसे कहा, 'बेटा, वह कुछ उदास रहती है । पता नही, क्या बात है ! हम लोगों से तो सीधे मुँह बात तक नहीं करती । तुम ज़रा पूछो तो, बात क्या है । शायद हम लोगों से कुछ भूल हो गयी हो....।'

"मैंने माँ से कहा, 'नहीं माँ, बात ऐसी नही, उसकी तबीयत ही कुछ ऐसी है। जब उसे अपने जीवन के बीते दिन और सगे-सम्बन्धी याद आने लगते हैं, तब वह कुछ उदास हो जाती है ।'

"सहमा मा के स्वरों मे रुखाई आ गयी । वह बोली, 'यही तो मैं जानना चाहती हूँ । आखिर वह उन दिनों को क्यों नहीं भूल जाती...क्या इस घर और जीवन मे उसके लिए कुछ भी नहीं ?"

"मैं सुनकर मौन रहा । मन-ही-मन सोचता रहा, सभी कुछ तो है... फिर न जाने सुरजीत क्यो उदास रहती है.. क्यों..?"

"मैं परेशान-सा यही कुछ सोचता रहा । कोई उपाय नही सूझता था, किस प्रकार उससे यह बात पूछूँ ।"

"कई दिनों के संघर्ष के बाद एक रात मैंने उससे कहा, 'जीत! माता जी तुम्हारी बहुत चिन्ता करती हैं । तुम बड़ी उदास रहती हो । इससे घर के और लोग भी परेशान है !"

वह माथा झुकाए कुछ पढ़ रही थी । अचानक उसका सिर ऊपर उठा, जैसे वह चौंक उठी हो और मेरी ओर गर्दन घुमा कर बोली, 'जी हाँ ! उनकी परेशानी का शायद यही कारण है । तो आप मुझे जरा ज़हर ला दीजिए, मैं खा कर कर मर जाऊँ । मरने में पहले मैं इस बच्चे का गला भी अपने हाथो मे घोंट दूँगी !' सोये हुए बच्चे की तरफ संकेत करती हुई वह बोली, 'जब मैं और यह नही रहेंगे, तो शायद किसी को किसी तरह की भी परेशानी नहीं रहेगी ?'

मुझे लगा जैसे सुरजीत पागल हो गयी है । मैंने कहा, "यह क्या पागलों-जैसी बाते कर रही हो...क्या हुआ तुम्हें..."

"धू धू करके जल रही हूँ मैं..." वह बोली, "जरा,जरा और तेल छिड़क दीजिए. .."

"मैं अवाक् उसके मुँह की ओर देखने लगा । और कुछ बोलने का साहस न हुआ । बात क्या है ..! कुछ समझ में आयी । फिर मैं लज्जित सा अपनी चारपाई पर लेट गया । मुझे

सुरजीत से ऐसे कठोर उत्तर की आशा नहीं थी । किन्तु बात क्या है इसी सोच में मेरे मस्तिष्क की उलझन बढ़ती गयी ।

"उस रात सुरजीत ने बत्ती समय से पहले बुझा दी । कमरे में अन्धेरा छा गया । मैंने सोचा, कल मैं माँ जी से पूछकर इन बातों का भेद पाने का यत्न करूँगा ।

"शायद तब आधी रात बीत चुकी थी, और अचानक मेरी आँख खुल गयी । मुझे कुछ सिसकियाँ सुनाई दे रही थीं । मैंने उठ कर बत्ती जलाई । देखा, सुरजीत सुप्त अबोध शिशु पर झुकी रो रही है । मैंने फिर बत्ती बुझा दी । अन्धेरे में उसके निकट जा बैठा । मैंने प्यार से उसका एक हाथ पकड़ा । वह मुझसे लिपट कर दबे-दबे स्वरों में रोने लगी । उसके गरम-गरम आँसू मेरी भुजाओं पर गिरते रहे । मैंने पूछा, 'बात क्या है ! आज मैंने तुम्हें रोते देख ही लिया...इस प्रकार न जाने तुम पहले कितनी बार रोती रही हो...आखिर रोने का कारण...? क्या तुम मुझे कुछ नहीं बताओगी !'

वह रोती रही । मैंने फिर कहा 'तुम बच्चे का गला घोंट देना चाहती हो ! स्वयं जहर खा कर मर जाना चाहती हो..आखिर क्यों ?"

"मैं अभागिनी हूँ !' वह बोली, 'मैं किसी की तलवार के घाट न उतर सकी । जलते हुए घर की लपटें मुझे न झुलस सकीं । मुझ अभागिन को मौत नहीं आयी...इसलिए अब जहर खाकर मर जाना चाहती हूँ ?'

"मैं अब भी नहीं समझा । क्या फिर तुम्हें किसी ने कुछ कहा है .. मेरे विचार से वही पुरानी बातें फिर तुम्हारे कानों तक जरूर पहुँचती होंगी, जो ब्याह से पहले इस घर के लोगों के मुँह से तुमने सुनी थीं । तुम चिन्ता न करो । जो भी जो कुछ बोलना

है, सब असत्य है... सब झूठ है । तुम कितनी निर्दोष हो, और तुम्हारी आत्मा कितनी पवित्र है, यह मैं जानता हूँ । मुझे तुम पर विश्वास है, तुम भी मेरी बातों पर विश्वास करो... ।"

"मैंने बच्चे को उठा कर छाती में लगा लिया । वह रोती रही । मैं फिर कहने लगा, 'अब मैं जान गया, तुम्हारे रोने और सदा उदास रहने का कारण क्या रहा है ।" वह रोती रही ।

"दूसरे दिन मैंने घर वालों से उनके इस बर्ताव की शिकायत की । वे सब हाथ धो कर मेरे पीछे पड़ गये । भाई अतर सिंह, मैं अकेला था और शेष सारा घर एक तरफ । मेरी कोई पेश न चली । मैं किसी प्रकार उन्हे यह विश्वास न दिलवा सका कि सुरजीत एक निर्दोष स्त्री है । वह बहते हुए गंगा-जल के समान पवित्र है और इस घर की शोभा है । निदान, मुझे उनकी बाते सुन कर चुप रह जाना पड़ा । कुछ दिनों बाद मैं घर छोड़ कर अलग रहने लगा । रिश्तेदारों से मेरा कोई लगाव न रहा ।'

उसकी नजरें ऊपर उठी । चलता-चलता वह काफी दूर निकल आया था । संध्या की धूमिल छाया और घनी हो चली थी । बागों के पीछे ईंटों के भट्टे की चिमनी का धुआँ गुब्बारे की तरह ऊपर उड़ रहा था । सड़क पर अब राहगीरों की संख्या कुछ बढ़-सी गयी थी । एक नज़र उसने पास से हो कर जाने वाले कुछ बूढ़ों की ओर देखा और फिर माथा झुकाए आगे बढ़ने लगा ।

"हाँ, तो भाई अतर सिंह, जब हम घर वालों से अलग हो चाँदनी चौक में रहने लगे, तब वे हम से और भी चिढ़ गए । और बिल्कुल हमारे विरुद्ध हो गये । सारे कुटुम्ब में हमें बदनाम किया जाने लगा । हमें हर ओर से बुरा-भला कहा जाने लगा, यहाँ तक कि पास-पड़ोस के लोग भी उंगलियाँ उठाने लगे । अपने अपनों के कैसे दुश्मन हो जाते है, यह मैंने तभी जाना और समझा ।

गर्ल्स स्कूल कमेटी के एक मेंबर हमारे मुहल्ले में रहते थे। उनकी विशेष दया और कृपा से मुर्जीन की नौकरी भी लगी। अपने दफ्तर में मैंने दिल्ली से अमृतसर तब्दीली की दरख्वास्त दे दी। कुछ दिनों के बाद मैं अमृतसर आ गया। मुझे आशा थी कि अमृतसर में हम आराम से रह सकेंगे। दुनिया की आवाज यहाँ हमारा पीछा नहीं करेगी। समाज अब अनुचित रूप से हमारी ओर उँगली नहीं उठाएगा। और हुआ भी ऐसा ही हम सुख से रहने लगे। मुर्जीन को यहाँ एक स्कूल में अध्यापिका की जगह मिल गयी। पर एक वस्तु यहाँ आ कर मुझे न मिल सकी। उसके लिए आँखें और मन तरसता ही रहा। वह थी मुर्जीन की मुसकान, जो मुरझाने वाले फूलों की भाँति हमेशा के लिए कुम्हला गयी थी।

'वह प्रायः मुझसे कहती, 'मैं भी कितनी अभागिन हूँ, जिसने आपकी दुनिया उजाड़ दी, और अपनों से हटा कर यहाँ ले आयी।'

"और मैं कहता, 'पगली, मेरी तो दुनिया ही तुमने आकर बसायी !'

"फिर वह गर्व-मिश्रित हँसी के साथ कहती, 'पर सच कहना जी, आप अपने मन में मेरे बारे में क्या सोचा करते हैं, मैं हूँ न बुरी'' ?

'बहुत, हद से ज्यादा !' मैं हँस कर कहता, 'तुमने मुझे अपने वश में कर लिया है न !'

"उस समय वह मुस्कराती हुई लज्जा से अपनी आँखें नीचे झुका लेती। थोड़ी देर बाद फिर जब मैं उसकी ओर देखता, वही उदासी उसके चेहरे पर होती और वही तिरस्कृति का रोष। मेरे लिए अब उसे समझना कुछ और कठिन होता जा रहा था। मुझे ऐसा लगता, जैसे हमारे परस्पर प्रेम का स्थान, अब केवल एक कर्त्तव्य ने ले लिया है। वह मेरे साथ केवल इसलिए रहने के लिए बाध्य

है, क्योंकि वह मेरी पत्नी है। वह मुझ से बातें इसलिए करती है, क्योंकि वह मेरी स्त्री है। वह कभी मेरे सामने इसलिए हँस और मुस्करा लेती है, क्योंकि अर्द्धांगिनी के नाते शायद यह उसका कर्त्तव्य है, वरना वह मेरी कुछ भी नहीं।

"एक दिन, रात के समय जब हम एक पुराने गुरुद्वारे के दर्शन को गये, परिक्रमा करते हुए वह मेरे साथ एक शिला-लेख के पास आ खड़ी हुई। वहाँ से हट कर फिर वह पास ही एक संगमर्मर पर अंकित कुछ शब्दों को पढ़ने लगी। इसमें उस दानी व्यक्ति का नाम, ग्राम और उसके पिता का नाम अंकित था, जिसने पाँच सौ एक रुपये परिक्रमा के संगमर्मर के लिए दान दिये थे। सुरजीत कुछ देर तक वहाँ खड़ी दानी पुरुष का नाम इत्यादि पढ़ती रही, और अचानक उसकी आँखें भर आयी। उन्हीं भीगी-भीगी आँखों से उसने मेरी ओर देखा और देखती रही। मैं उसकी आँखों की मूक भाषा न समझ सका। कुछ पूछने का साहस भी नहीं हुआ। वह आगे बढ़ने लगी। मैं मौन उसके पीछे हो लिया। घर तक उसने रास्ते में मुझसे कोई बात न की।

"घर पहुँच कर भोजन के समय चित्त की खराबी का बहाना करके उसने भोजन भी नहीं किया। उसका वह बहाना मेरे लिए और भी परेशानी का कारण बन गया। तरह-तरह की शंकाएँ मेरे मन में उठती रहीं। रात को चारपाई पर लेटे-लेटे मैं उसके बारे में सोचता रहा, कहीं मैंने इसे अपनी बना कर इसके साथ कोई अन्याय तो नहीं किया। जब से यह मेरे घर आयी है, वास्तव में मैंने इसे उदास और असन्तुष्ट ही पाया है..क्या इस भूल की निवृत्ति का कोई उपाय नहीं..? क्या मुझे पश्चाताप के रूप में सदैव संघर्ष ही में खोए रहना पड़ेगा....? दोष तो इसमें मेरा ही है क्योंकि इसे दुःखों में मैं ही घसीट लाया हूँ...मेरी करनी से

६

इसे क्या कुछ नहीं सुनना और सहना पड़ा. मैं गुनाहगार हूँ . .मैंने ही गलतियाँ की हैं, इत्यादि । रात भर मैं सो न सका ।

"दूसरे दिन मेरा सिर दुख रहा था । हल्का-सा बुखार भी हो आया था । मैं काम पर नहीं गया । मौन, बैठक में लेटा रहा । वह भी मेरे पास न आयी । साँझ को तो मैं बुखार से तप रहा था । रात को टेम्परेचर और अधिक बढ़ गया । दूसरे दिन सबेरे डाक्टर ने टाईफाईड घोषित कर दिया । मेरी अच्छी तरह देख-भाल होने लगी । पन्द्रह-बीस दिनों तक तो मुझे कोई होश नहीं रहा. इसके बाद जब मैंने आँख खोली, तो दिल्ली के अपने सारे परिवार को अपनी चरपाई के पास खड़े पाया । माँ थी, बहनें थी और घर के अन्य लोग भी । सुरजीत बेचारी भी एक कोने में खड़ी थी । माँ बड़े प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरती हुई कह रही थीं, बेटा, अच्छा हो जाएगा . . . आँख खोल, देख मैं दिल्ली से आयी हूँ वह देख, वह तेरी बहन है . . .वह मुन्नी, और वह देख तेरी चाची खड़ी है' फिर सुरजीत की ओर संकेत करती हुई बोली, 'देख वह कलमुँही डाइन भी यहीं खड़ी है, जिसने तेरा कलेजा चाटा था । तू अच्छा हो जा बेटा, फिर हम इससे निपट लेंगे ।' मैं अपनी फटी-फटी आँखों से उस डाइन कलमुँही को देखने लगा, जिसने मेरा कलेजा चाटा था.. ऊफ ! जब उससे नजरें मिलीं, मेरा मन खिल उठा । वह तो देवी थी । वह देवी, जिसके रूप और गुणों पर मैं मुग्ध था । उसकी आँखों से आँसू झड़ झड़ कर नीचे फर्श पर गिर रहे थे । यह मुझ से न देखा गया और मैंने अपनी आँखें मूँद ली ।

"और थोड़े दिन पाकर मैं अच्छा हो गया । बुखार नहीं था, लेकिन कमजोरी बहुत थी । अधिक चलने-फिरने से मजबूर था । इस बीच, मैं सुरजीत को घर के अन्य लोगों के जमघट में बहुत कम देख पाया ।

)

है, क्योंकि वह मेरी पत्नी है। वह मुझ से बातें इसलिए करती है, क्योंकि वह मेरी स्त्री है। वह कभी मेरे सामने इसलिए हँस और मुस्करा लेती है, क्योंकि अर्द्धांगिनी के नाते शायद यह उसका कर्त्तव्य है, वरना वह मेरी कुछ भी नहीं।

"एक दिन, रात के समय जब हम एक पुराने गुरुद्वारे के दर्शन को गये, परिक्रमा करते हुए वह मेरे साथ एक शिला-लेख के पास आ खड़ी हुई। वहाँ से हट कर फिर वह पास ही एक संगमर्मर पर अंकित कुछ शब्दों को पढ़ने लगी। इसमें उस दानी व्यक्ति का नाम ग्राम और उसके पिता का नाम अंकित था, जिसने पाँच सौ एक रुपये परिक्रमा के संगमर्मर के लिए दान दिये थे। सुरजीत कुछ देर तक वहाँ खड़ी दानी पुरुष का नाम इत्यादि पढ़ती रही, और अचानक उसकी आँखें भर आयी। उन्हीं भीगी-भीगी आँखों से उसने मेरी ओर देखा और देखती रही। मैं उसकी आँखों की मूक भाषा न समझ सका। कुछ पूछने का साहस भी नहीं हुआ। वह आगे बढ़ने लगी। मैं मौन उसके पीछे हो लिया। घर तक उसने रास्ते में मुझसे कोई बात न की।

"घर पहुँच कर भोजन के समय चित्त की खराबी का बहाना करके उसने भोजन भी नहीं किया। उसका वह बहाना मेरे लिए और भी परेशानी का कारण बन गया। तरह-तरह की शंकाएँ मेरे मन में उठती रहीं। रात को चारपाई पर लेटे-लेटे मैं उसके बारे में सोचता रहा, कहीं मैंने इसे अपनी बना कर इसके साथ कोई अन्याय तो नहीं किया। जब से यह मेरे घर आयी है, वास्तव में मैंने इसे उदास और असन्तुष्ट ही पाया है..क्या इस भूल की निवृत्ति का कोई उपाय नहीं..? क्या मुझे पश्चाताप के रूप में सदैव संघर्ष ही में खोए रहना पड़ेगा...? दोष तो इसमें मेरा ही है क्योंकि इसे दुखों में मैं ही घसीट लाया हूँ...मेरी करनी में

इसे क्या कुछ नहीं सुनना और सहना पड़ा, मैं गुनाहगार हूँ...मैंने ही गलतियाँ की हैं, इत्यादि। रात भर मैं सो न सका।

"दूसरे दिन मेरा सिर दुख रहा था। हल्का-सा बुखार भी हो आया था। मैं काम पर नहीं गया। मौन, बैठक में लेटा रहा। वह भी मेरे पास न आयी। साँझ को तो मैं बुखार में तप रहा था। रात को टेम्परेचर और अधिक बढ़ गया। दूसरे दिन सवेरे डाक्टर ने टाईफाईड घोषित कर दिया। मेरी अच्छी तरह देख-भाल होने लगी। पन्द्रह-बीस दिनों तक तो मुझे कोई होश नहीं रहा, इसके बाद जब मैंने आँख खोली, तो दिल्ली के अपने सारे परिवार को अपनी चरपाई के पास खड़े पाया। माँ थीं, बहनें थीं और घर के अन्य लोग भी। सुरजीत बेचारी भी एक कोने में खड़ी थी। माँ बड़े प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरती हुई कह रही थी, 'बेटा, अच्छा हो जाएगा.. आँख खोल, देख मैं दिल्ली से आयी हूँ वह देख, वह तेरी बहन है...वह मुन्नी, और वह देख तेरी चाची खड़ी है' फिर सुरजीत की ओर संकेत करती हुई बोली, 'देख वह कलमुँही डाइन भी यहीं खड़ी है, जिसने तेरा कलेजा चाटा था। तू अच्छा हो जा बेटा, फिर हम इससे निपट लेंगे।' मैं अपनी फटी-फटी आँखों से उस डाइन कलमुँही को देखने लगा, जिसने मेरा कलेजा चाटा था..ऊफ! जब उससे नजरें मिलीं, मेरा मन खिल उठा। वह तो देवी थी। वह देवी, जिसके रूप और गुणों पर मैं मुग्ध था। उसकी आँखों से आँसू झड़ झड़ कर नीचे फर्श पर गिर रहे थे। यह मुझ से न देखा गया और मैंने अपनी आँखें मूँद लीं।

"और थोड़े दिन पाकर मैं अच्छा हो गया। बुखार नहीं था, लेकिन कमजोरी बहुत थी। अधिक चलने-फिरने से मजबूर था। इस बीच, मैं सुरजीत को घर के अन्य लोगों के जमघट में बहुत कम देख पाया।

"एक दिन आधी रात के बाद वह दबे पाँव मेरे पास आयी। उसका चेहरा किसी रोगिणी की भाँति, शुष्क और पीला दिखाई देता था। वह मेरे पास आयी और मेरे पैरों पर गिर कर रोने लगी। वह खुलकर रो भी नहीं सकती थी। उसकी दबी घुटी सिसकियाँ मेरी छाती पर हथौड़ों की तरह चोट पहुँचा रही थीं।

"मैंने संकेत से कुछ निकट होकर बैठ जाने को कहा। फिर उससे बोला, 'तुमने अपना यह क्या हाल बना रखा है?"

"वह मौन रही और आँसू बहाती रही।

मैंने फिर कहा, 'कुछ बोलो, मैं तुम्हारे मुँह से कुछ सुनना चाहता हूँ।'

"उत्तर में वह बोली, 'मैं आपसे धर्मशाला जाने की अनुमति लेने आयी हूँ।'

"मैंने पूछा, 'क्यों, वहाँ क्या काम है ?"

"वह बोली, 'वहाँ मेरे एक दूर के रिश्ते के चाचा रहते हैं. वे बीमार हैं।'

"चाचा, मैंने आश्चर्य से पूछा, 'तुमने पहले कभी इसकी चर्चा नहीं की।"

वह बोली, "उनके ठिकाने का मुझे हाल ही में पता चला है। फिर आप तो माँ जी के साथ दिल्ली चले जाएँगे। मैं अकेली ही यहाँ रह जाउँगी। स्कूल में भी छुट्टियाँ है., अच्छा है, यदि धर्मशाला वाले चाचा के पास चली जाऊँ, समय भी कट जाएगा।"

"मैं चिन्ता में खो गया। अकेले बेचारी कहाँ भटकती फिरेगी, काश, मैं इसके साथ जाने के योग्य होता। मौन सोचता ही रहा। सहसा मुझे वह रात याद आ गयी, जब हम गुरुद्वारे से पलटे थे, और सुरजीत ने चित्त की खराबी का बहाना करके खाना नहीं खाया था।

मैंने कहा, "जीत, यदि तुम धर्मशाला जाना चाहती हो तो चली जाना, किन्तु मुझे एक बात तो बताओ उस दिन तुम गुरुद्वारे में वह शिला लेख पढ़कर मुरझा क्यों गयी थी—रोने क्यों लगी थी ...जिस सज्जन का नाम उस सगमर्मर पर खुदा हुआ था, क्या तुम उसे जानती हो ?" उसने 'हाँ' के अन्दाज में माथा हिला दिया ।

"कौन है वह तब ?" मैंने प्रश्न किया, क्या कोई अपना आदमी है ?"

"हाँ" उसने रुंधे हुए कंठ से उत्तर दिया ।

"कौन है वह ?" इस बार मैंने कुछ शंकित होकर पूछा ।

उसने बड़ी कठिनाइयों से भर्राए हुए स्वर से उत्तर दिया, 'मुन्ने का पिता, पाँच वर्ष पहले हम इसी गुरुद्वारे के दर्शन को आये थे । तब यह मुन्ना जनमा नहीं था ।" वह चुप हो गयी । मेरी आँखों के सामने कमरे का अन्धकार और घना हो गया । मेरे मुंह से और कोई बात न निकल सकी । मैंने टार्च की सहायता से दीवार पर टंगी घड़ी में समय देखा । रात का एक बज रहा था ।

"भाई अतरसिंह, एक सप्ताह बाद मैं दिल्ली ले आया गया । वह घर वालों की जली-कटी सुनती हुई धर्मशाला चली गयी । धर्मशाला जाकर वह कहाँ रही, किसके पास रही, वहाँ उसका कोई चाचा था भी या नहीं, या केवल बहाना ही करके गयी थी, मुझे कुछ पता न चला । क्योंकि मुझे उसकी कोई चिट्ठी नहीं मिली थी । मैंने कुछ पता लगाने का यत्न भी किया तो सफलता न मिली । हाँ दो महीनों के बाद मुझे तुम्हारी चिट्ठी अवश्य मिली थी भाई अतरसिंह, जिसे पढ कर मैं अमृतसर दौड़ा आया । यहा आकर मैंने अपनी सपनों की रानी सुरजीत की अस्थियाँ

देखीं । वह एक महीने से टाईफायड से पीड़ित थी । उसने रोग-शय्या पर पड़े-पड़े मुझे कई बार याद किया था । कई पत्र लिखवा कर डाले थे । किन्तु घर वालों की कृपा से वे पत्र मेरे पास नहीं पहुँचते रहे । मरने से पहले उसने मुझसे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था । इसका कोई विशेष कारण मेरी समझ में नहीं आया । हां, इतना मैं जानता हूँ कि जब माँ मुझे दिल्ली ले जा रही थी तब उन्होंने उसे कुछ उलाहने देते हुए यह भी कहा था, 'तुमने अपने लड़के को मेरे बेटे के रुपयों का हकदार बनाने और आप मजे में मौज लूटने के लिए ही तो उससे ब्याह किया है, और उसे कुछ दे दिला कर मार डालना चाहती थीं । किन्तु कलमुही, तू सफल नहीं हो सकी । अब मेरा बेटा तेरा मुँह फिर कभी नहीं देखेगा ।'

"मैं फटी-फटी आँखों से श्मशान में उस निर्दोष देवी की चिता की राख में बिखरे हुए फूल देखता रहा । मेरी आँखों से टप-टप आँसू नीचे झरते रहे । मुझे सुरजीत भी चीखें मार-मार कर रोती सुनाई दे रही थी । वह नहीं, उसकी आत्मा रो रही थी । वे अस्थियाँ रो रही थीं, जिन्हें मैं चिता की राख में उठा-उठा कर मिट्टी के एक बर्तन में रख रहा था । मैंने जली-भुनी हड्डियों से भरी वह हाँड़ी उठाकर जब अपनी छाती से लगायी, तब मुझे धैर्य बँधा । तब संध्या का समय था और सूर्य पश्चिम की ओर डूब चुका था, मैं पागलों की तरह नहर की तरफ बढ़ा चला जा रहा था, चिता की राख बहाने के लिए—उस नहर में, जो व्यास से निकलती है, और वह व्यास, जो पावन हिमालय की गोद से उद्भूत होती है । सुरजीत मुझ से और दूर जा रही थी । वह मेरे जीवन में एक सपने की तरह आयी थी, और मानो आँख खुलते ही लोप हो गयी ।

"मुझे याद है, जब तुमने मुझे 'फारखती' पर हस्ताक्षर करने

के लिए कहा था, तब मैंने गुस्से में उसे फाड़ डाला था। कागज का वह टुकड़ा कैसे मुझ से मेरा अधिकार छीन सकता था। मेरा तो सब कुछ लुट ही गया था। बच्चा सुर्जीत द्वारा ही अनाथालय मे दाखिल कर दिया गया था। मैं उसे लौटा लाया था।

"भाई ! उसे मरे आज लग-भग पाँच वर्ष बीत चुके हैं। आज ही की तारीख की वह मनहूस संध्या थी, जब मैंने उसकी चिता की राख नहर मे बहायी थी। आज मैं फिर भूला-भटका इस ओर निकल आया हूँ। मैं थक चुका हूँ। और मेरे पाँव आगे नहीं बढ़ रहे हैं।"

सहसा सड़क पर एक बवंडर-सा घूमता हुआ, फिर उसके चारों ओर एक चक्कर काट कर, आगे निकल गया। वह चलता-चलता तन्द्रिल मनुष्य की तरह चौंक उठा। उसे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे अमर सिंह वसीकानवीस की आत्मा अब उससे विदा हो, नाशपातियों के बाग की ओर निकल गयी है। वहाँ सघन वृक्षों की छाया में काफी अन्धेरा फैल चुका था। उसने देखा, सामने नहर थी, और अगल-बगल दो छोटे सूए यानी छोटी नहरें। वह आगे बढा और पुल पर जा कर बैठ गया। एक ओर पनचक्की चल रही थी, जिसकी घरघराहट मे सारा वातावरण किसी बूढ़े रोगी की भाँति खाँसता और खंखारता प्रतीत होता था। दूसरी ओर टकरा कर गिरने वाला नहर का पानी कर्कश नाद कर रहा था। वह उस स्वर में खो-सा गया। प्रवाह मे कितनी शक्ति है, और शक्ति मे कितना संचार ! किन्तु चिता की राख और कुछ अस्थियाँ इस जल में गिर कर बह जाती है। कोई शक्ति उन्हें दोबारा 'सुरजीत' नहीं बना देती !

नहरो के उस पार खेत थे। खेतो से परे गाँव। खेतो में काम करने वाले किसानों के बैल, और साथ ही बैलो के गले की घंटियाँ

की आवाज रह-रह कर उसे चौंकाने लगी । वह अन्धेरे में प्रत्येक वस्तु को फटी-फटी आँखों से देख रहा था । किन्तु उसकी दृष्टि कहीं टिकती नहीं थी । रह-रह कर प्रवाहित फेनिल जल की ओर झुक जाती थी ।

कुछ देर बाद उस ओर से एक ताँगा गुजरा । ताँगे वाले ने ताँगा रोक कर उससे पूछा, "सरदार जी, शहर चलिएगा ?" वह चौंक उठा । मुँह से कुछ न बोला, और मौन उठ कर ताँगे में आ बैठ गया ।

ताँगे वाले ने पूछा, "कहाँ चलूं, सरदार साहब !"

"कम्पनी बाग ।" उसके मुँह से निकला । ताँगे वाले ने एक बार अपना चेहरा घुमा कर उसकी तरफ देखा और ताँगा हाँक दिया।

आधे घंटे में ताँगा कम्पनी बाग की सडकों पर घूम रहा था। और थोड़ी देर बाद ताँगा यूनाइटेड क्लब के गेट पर खड़ा था। और जैसे ही वह उस पर से नीचे उतर कर लड़खड़ाता-सा दो पग आगे बढ़ा, "हैलो !" एक स्वर ने जैसे उसे 'ब्रेक'-सा लगा दिया। देखा, तो मिस अचला बगल में खड़ी थी । "ओह डीयर ! आज फिर तुमने देर कर दी....राह देखते-देखते मेरी आँखें पथरा गयी !" आगे बढ़ कर मिस ने उसे अपने हाथों का सहारा दिया । "ओह ! आज शायद तुमने कुछ पी रखी है !"

वह मुँह से कुछ नहीं बोला और निढाल-सा उसके साथ चलता गया । अन्दर 'हाल' में साजों की धुन बज रही थी, और जूलिया अपनी मधुर लय में एक गीत आरम्भ कर चुकी थी । गीत भावोत्पादक था, जिसके आरम्भ के बोल थे—

"प्रिय यदि तुम पाषाण-हृदय न होते, तो मेरे गीतों में भी करुणा न होती !"

व्यथा में सोता हो आकाश

कड़ी धूप और तेज़ गर्मी के कारण शरीर से पसीना छूटता, जब दो पहर के समय आकाश से आग बरसती किसी करवट चैन नसीब नहीं होता था। और उस बड़े से आँगन में सन्नाटा छाया हुआ था। आँगन में यह एक पेड़ लेकिन लू की लपट के कारण, उसकी छाँव तले बैठना महाल था। लू की लपट आती और जैसे शरीर झुलस देती, आँखों में अंगारे भर देती। कंठ सूख जाता। अमरूद की शाखा में लटक रहे पिंजरे में कैद मिट्ठू एक दो रटे रटाए बोल बोलने लगता। बोलो. .राम...राम..। और फिर अपने पर फड़फड़ाता हुआ चीखने लगता मिट्ठू .... मिट्ठू..." ऐसा लगता जैसे वह तोता पिंजरे की कैद से आजाद होकर बहुत दूर उड़ जाना चाहता है। लेकिन उसकी आवाज़ सुननेवाला वहाँ कौन था। उसी पेड़ की जड़ के पास एक कुत्ता बैठा जबान निकाले हाँफता दिखाई दे रहा था।

उस बड़े से आँगन के एक कोने में, एक बहुत पुराना कुआँ था। जिसकी मेंढ़ का पलस्तर जगह-जगह से उखड़ चुका था। पानी बहुत गहराई में था। मेंढ़ की दो ईंटों के बीच एक पीपल का पेड़ उग आया था, जिसकी शाखें नई-नई कोंपलों से लदी हुई थीं। रह-रह कर कुछ पक्षी उस पेड़ की शाखाओं पर बैठ-कर चहचहाने लगते थे। अमरूद के पेड़ पर तो उनकी एक खासी भीड़ जमा हो गई थी। उनके शोर से दोपहर के सन्नाटे में एक हलचल सी मच गई थी।

घर के बरामदों में लगे, बाँसों से चिपकी हुई माधवी लता को

देखकर ऐसा लगता था, जैसे यह बसन्त दूती बड़े अरमान लिये, बड़ी चाह लिये लजाई खड़ी है। सूर्य की किरणें इसे गुदगुदा रही हैं।

उसी आँगन मे एक किनारे एक ऊंचा सा कदम्ब का पेड़ था, जिसकी मोटी-मोटी शाखाओं में सावन के महीने मे झूला पड़ता है, उसके फूलों का मधुर-मद सौरभ मन मे ताजगी भर रहा था।

घर के उस कमरे में जहाँ सन्तो मनो की माएँ सब दरवाजे और खिडकियाँ बन्द किये अन्दर आपस में न जाने क्या फुसफुसा रही थीं, ठीक उसी कमरे मे सटे एक दूसरे कमरे में सन्ध्या एक कुर्सी पर बैठी टेबुल पर झुकी-झुकी कुछ लिख रही थी। कुछ पहले एक पुस्तक पढ़ते-पढते सो जाने का प्रयत्न किया था। पर, उसे नींद नही आई। उसे दिन के समय नीद बिल्कुल नही आती। वह अक्सर सोचा करती है, भला दिन के समय भी क्या सोना! सो-सो कर ही तो स्त्रियाँ शरीर नष्ट कर लेती है।

भावजें बातें करती-करती खर्राटे भरने लगी थी। वह सोचने लगी, क्या दिन के समय भी नीद मे सपने दिखाई दिया करते है। वे प्यारे सपने कितने मधुर होते है, जिनमें कोई चाँद-तारों की दुनिया में विचरने लगे वहाँ, जहाँ,——

थकी पलकें सपनो में डाल,
व्यथा मे सोना हो आकाश!

कुर्सी पर से उठकर वह खिड़की के निकट आ खडी हुई। खिड़की के पट खोलते ही लू का एक भभका सा लगा। उसने बाहर झाँक कर देखा, कुछ मजदूर औरते सड़क के किनारे बैठी गिट्टी तोड़ रही थी, चिल-चिलाती हुई धूप उन पर बरस रही थी।

खट्....खट्.. .खट्....खट् निरन्तर एक स्वर गूँज रहा था। और शायद इसी ताल पर वे कुली औरतें, एक दो तीन मुँह-ही-मुँह में गुनगुना रही रही थीं। वह उन्हें गौर से देखती रही। शायद उन्हें कभी लू नही लगती। उन्हें बिजली के पंखों की हवा नही भाती, उनका कंठ नही सूखता। उन्हें शरबत और कोल्ड ड्रिन्क्स इत्यादि की आवश्यकता नही पड़ती। उन्हें दिन के समय नींद नही आती। वे सुनहले सपने देखने की आदी नही।

वह सोचने लगी। सपने तो मैंने भी नही देखे। कभी सुनहले सपनों की एक दुनिया बसी थी, सो वह उजड़ गई। भाबजी के खर्राटों का स्वर निरन्तर उसके कानों में गूँज रहा था। जैसे मशीन गन से गोलियाँ छूट रही हों। सन्तो मन्नो गुड़ियों के खेल खेलने में लिप्त थी। उसने भी कभी गुडियों के खेल खेले हैं। गुड्डी-गुड्डा का ब्याह रचाया है। उसने यह ब्याह रचाते हुए यह कभी नही सोचा था कि इन गुड़ियों की आँखों में आँसू नही होते। यदि गुड्डी का गुड्डा मर जाए, पत्नी विधवा हो जाए, तो उसकी आँखों से आँसू कभी नही निकलते। दिल को चीरने वाला दर्द उसके सीने में कभी नही उठता। उसकी आँखों के सामने यह ससार कदापि शून्य दिखाई नहीं पड़ता। गुड़ियों की आँखों में आँसू नही होते। खुशी के खेल तो ऐसी ही बेजान चीजों से खेले जा सकते हैं। गोटियों से, कंकड़ से, मिट्टी और पत्थर से नहीं। किन्तु दुख केवल उन्ही वस्तुओं के सम्पर्क में आने से मिलता है, जिनकी आँखों से कभी आँसू बरसते हैं, जिनके सीने में दिल धड़कता है, और जो दिवस का ताप सहते है। और रात को आराम की नींद सोने की इच्छा रखते हैं। किन्तु एक जीवन ऐसा भी होता है, जो केवल आँसुओं का पुंज होता है। जैसे, बर्फ का तूदा और ज्यों-ज्यों वेदना की उष्णता उस पर पड़ती है, वह पिघलने लगता है।

देखकर ऐसा लगता था, जैसे यह बसंत दूनी बड़े अरमान लिये, बड़ी चाह लिये लजाई खड़ी है। सूर्य की किरणें इसे गुदगुदा रही है।

उसी आँगन में एक किनारे एक ऊँचा सा कदम्ब का पेड़ था, जिसकी मोटी-मोटी शाखाओं में सावन के महीने में झूला पड़ता है, उसके फूलों का मधुर-मंद सौरभ मन में ताजगी भर रहा था।

घर के उस कमरे में जहाँ मन्तो मंतो की माएँ सब दरवाजे और खिडकियाँ बन्द किये अन्दर आपस में न जाने क्या फुसफुसा रही थीं, ठीक उसी कमरे से सटे एक दूसरे कमरे में संध्या एक कुर्सी पर बैठी टेबुल पर झुकी-झुकी कुछ लिख रही थी। कुछ पहले एक पुस्तक पढ़ते-पढ़ते सो जाने का प्रयत्न किया था। पर, उसे नींद नहीं आई। उसे दिन के समय नींद बिल्कुल नहीं आती। वह अक्सर सोचा करती है, भला दिन के समय भी क्या सोना! सो-सो कर ही तो स्त्रियाँ शरीर नष्ट कर लेती है।

भावजें बातें करती-करती खर्राटे भरने लगी थी। वह सोचने लगी, क्या दिन के समय भी नींद में सपने दिखाई दिया करते हैं। वे प्यारे सपने कितने मधुर होते है, जिनमें कोई चाँद-तारों की दुनिया में विचरने लगे वहाँ, जहाँ——

थकी पलकें सपनों में डाल,
व्यथा में सोता हो आकाश!

कुर्सी पर से उठकर वह खिड़की के निकट आ खड़ी हुई। खिड़की के पट खोलते ही लू का एक भभका सा लगा। उसने बाहर झाँक कर देखा, कुछ मजदूर औरतें सड़क के किनारे बैठी गिट्टी तोड़ रही थी, चिल-चिलाती हुई धूप उन पर बरस रही थी।

खट्....खट्....खट्.. .खट् निरन्तर एक स्वर गूँज रहा था। और शायद इसी ताल पर वे कुली औरतें, एक दो तीन, मुँह-ही-मुँह में गुनगुना रही रही थी। वह उन्हें गौर से देखती रही। शायद उन्हें कभी लू नही लगती। उन्हें बिजली के पंखों की हवा नही भाती, उनका कंठ नही सूखता। उन्हें शरबत और कोल्ड ड्रिंक्स इत्यादि की आवश्यकता नही पडती। उन्हें दिन के समय नींद नही आती। वे सुनहले सपने देखने की आदी नही।

वह सोचने लगी। सपने तो मैंने भी नही देखे। कभी सुनहले सपनों की एक दुनिया बसी थी, सो वह उजड़ गई। भाबजी के खर्राटों का स्वर निरन्तर उसके कानों में गूँज रहा था। जैसे मशीन गन से गोलियाँ छूट रही हों। सन्तो मन्तो गुड़ियों के खेल खेलने में लिप्त थी। उसने भी कभी गुडियों के खेल खेले है। गुड्डी-गुड्डा का व्याह रचाया है। उसने यह व्याह रचाते हुए यह कभी नही सोचा था कि इन गुड़ियों की आँखों में आँसू नही होते। यदि गुड्डी का गुड्डा मर जाए, पत्नी विधवा हो जाए, तो उसकी आँखों से आँसू कभी नहीं निकलते। दिल को चीरने वाला दर्द उसके सीने में कभी नही उठता। उसकी आँखों के सामने यह ससार कदापि शून्य दिखाई नहीं पड़ता। गुडियों की आँखों मे आँसू नही होते। खुशी के खेल तो ऐसी ही बेजान चीजों से खेले जा सकते है। गोटियों से, कंकड़ से, मिट्टी और पत्थर से नहीं। किन्तु दुख केवल उन्ही वस्तुओं के सम्पर्क में आने से मिलता है, जिनकी आँखों मे कभी आँसू बरसते है, जिनके सीने मे दिल धड़कता है, और जो दिवस का ताप सहते है। और रात को आराम की नीद सोने की इच्छा रखते है। किन्तु एक जीवन ऐसा भी होता है, जो केवल आँसुओं का पुज होता है। जैसे, बर्फ का तूदा और ज्यों-ज्यों वेदना की उष्णता उस पर पडती है, वह पिघलने लगता है।

उसकी आँखों में आँसू उमड आए थे । न जाने सन्तो मन्तो को हमेशा शादी-ब्याह ही के खेल क्यों सूझते हैं । वह कमरे से निकल कर बाहर आँगन में आ गई और फिर रसोई घर की ओर जाने लगी । उसने अनुभव किया 'ओह ! कितनी गरमी है...।' दोपहर इस कदर आग बरसा रही है कि चील अण्डा फेंके ।'

वह रसोई घर में घुस कर अंगीठी में आग सुलगाने लगी । कोयले का सफेद धुआँ, रसोई घर की खिडकी के दरवाजे और ऊपर की चिमनी से निकल निकल कर वायुमंडल में फैलने लगा। मिठ्ठू को शायद धुँआ अच्छा नहीं लगा 'मिठ्ठू ..मिठ्ठू...मिठ्ठू..।' वह खिड़की से बाहर झाँक, उसे देखकर मुस्कराने लगी । धुएँ के कारण उसकी आँखों में आँसू निकल कर, उसके गोरे गुलाबी गालों पर तुषार बिन्दु की भाँति चमक रहे थे। वह बोली "अरे मुए तोताराम अपने मुँह मियाँ मिठ्ठू न बन ..."सोचने लगी, बेचारा पंछी भी तो आदत से मजबूर है। वह फिर कहने लगी, "अरे मुए मिठ्ठू सो जा । सो जा न, क्या तुझे नींद नहीं आती...क्यों कान खाए जा रहा है ? लोग सो रहे हैं, तू भी सो जा....।" "पर मन ही मन कहने लगी, बेचारे मिठ्ठू तो दिन के समय नींद नहीं सोते...।'

मिठ्ठू चीखा... "बीबी....बीबी...।"
वह इस पुकार को सुनकर खिल उठी—"हाँ बोल मिठ्ठू, बोलो–राम राम.....।"

मिठ्ठू ने ये शब्द दोहराये —"राम...राम...." और पर फड़फड़ाता हुआ पिंजरे के अन्दर झूले में झूलने लगा । वह उसी प्रकार खिड़की के निकट खड़ी उसे देखती रही । बेचारा पिंजरे का कैदी शायद आजाद हो जाना चाहता था । वह देख रही थी— अनेकों पक्षी कदम के पेड़ पर चहचहा रहे थे । और पिंजरे में बन्द

मिट्ठू चीख रहा था। वह सोचने लगी, बन्दी जीवन भी कितना असह्य है। बेरसी और वीरानी में जीवन बीतना है...बस हमेशा कुछ सोचते रहना। कभी अपने मन और कभी दूसरों को कोसते रहना। उसकी अपनी दशा भी किसी बंदिनी से कम नहीं। यह घर की चारदिवारी उसके लिए अब बन्दीगृह बन गया है। क्योंकि अब वह अपनी इच्छा से न यहाँ बोल सकती है, न रो सकती है और न हँस सकती है। भावज उसकी हर बात पर नाक-भौं चढ़ाती है, मुँह बिसोरती है। माँ बात-बात पर कहती है, ये बला न जाने कब सिर से टलेगी।' कभी वह घर वालों के लिये विपत्ति बन जाती है और कभी कोई और मुसीबत...। वह मिट्ठू से बोली—'तुझे भूख लगी है क्या...क्या पानी पीयेगा...ठहर अभी आई! अभी आई मैं जरा अंगीठी सुलगा लूँ...?"

रसोई घर का धुँआ बाहर फैलने लगा था। अपने कमरे में लेटी भावजों का धुएँ के कारण दम-सा घुटने लगा। माँ की भी आँख खुल गई। वह समझ गई, संध्या अभी से चूल्हे-चौके के पीछे पड़ गई है। उसने उठकर इतना भी न कहा कि बेटी अभी ये सब कुछ रहने दे, जा जाकर आराम कर फिर सब के साथ मिलकर काम-धंधा निबटा लेना। बेटी इतनी गरमी में चूल्हा सुलगाने की क्या जल्दी पड़ी है...! पर माँ के मुँह से कुछ भी न निकला।

यदि दोपहर के समय संध्या को नींद आ जाए, और वह सुन्दर सुनहले सपनों की दुनिया में खो जाए, तो फिर क्या हो..?

रात की नींद तो स्वाभाविक है। लेकिन दिन की नींद आना सपने की निशानी है। कौन सोना नहीं चाहता...कौन सुख के सपने देखना नहीं चाहता...दुःख किसे प्यारा लगता है..? लेकिन सब सुख की ही सोचें और दुःख सहने वाला कोई न हो, तो सुख भी दुःख बन जाता है। कुछ दुःख और कुछ सुख...इन दोनों

की क्रिया ही में जीवन बनता है । फिर संध्या....' ऐसी पगली तू किसी को सुखी देखकर क्यों जलती है....क्यो आहें भरती है..! शायद धुएँ की कड़वाहट के कारण उसकी आँखों से आँसू बहने लगे थे !' बिना बहाने किसी को रोना भी तो नही आता 'संध्या इतना क्यों सोचती है....!

मन-ही-मन कहने लगी —'अतीत भूलता नहीं । हाँ वह भी तो एक जमाना था, जब तू एक दिन इस घर से दुल्हन बनकर कहीं गई थी । तू किसी के दिल का अरमान थी तेरे अपने अरमानों की दुनिया मे आशाओं का सूर्य उदय हो रहा था । लेकिन अब तो उस दुनिया में दोपहर का सा सन्नाटा छा चुका है और धीरे-धीरे शोक की संध्या छा जाने को है। एक दिन की बात याद है न, जब तू उनके साथ खिड़की के निकट खड़ी दूर क्षितिज पर तैरते हुए बादलों को देख रही थी, .. दूर जैसे पहाड़ की चोटियों से टकरा-टकरा कर वे बादल गरज उठते थे, बिजली कौंध आती थी । ऐसे समय, ऐसे वातावरण मे वे बोले थे—"संध्या तुम कितनी अच्छी हो ।'

तुम ने पूछा था "कितनी...? क्या किसी खिले हुए फूल के समान....या बहुत दूर चमकने वाली किसी बिजली की तरह ? ये तो सब भरम है । फूल खिल कर मुरझा जाता है, और बिजली चमक कर लोप हो जाती है। न जाने तब मै कितनी अच्छी हूँ ..?"

'तुम आँखो का उजाला हो, मेरी वीरान दुनिया की शोभा हो....।'"

"ओह ! आप ने तो मुझे कविता बना डाला" अचानक बाहर कुछ बाजों की आवाज निकट आती सुनाई दी । उसके विचारों की शृंखला टूट गई । बाजों की आवाज और निकट आती जा रही थी । ये नगारे नहीं, शादियाने नहीं, शहनाई नहीं ।

ये तो कुछ और ही हैं । दोपहर की गर्मी, धरती लोहे की तरह तप रही है, तब ये कौन बावरे हैं जो इस तेज धूप में बाजे बजाते हुए घूम फिर रहे हैं। होंगे भिखमगे...!" मिट्ठू जोरों से चीखा—"दीदी...।"

बाजों की आवाज घर के पास आकर रुक गई। किसी ने बाहर के दरवाजे की कुंडी खटखटाई उसने रसोई घर की खिड़की के निकट ही खड़े-खड़े पूछा—"कौन है . ?"

"मिट्ठू....!" मिट्ठू बोला

'मर जा। पागल नहीं तो....।" वह जैसे कुछ खीझ कर बोली—बाहर किसी ने फिर कुंडी खटखटाई। माँ अन्दर के कमरे से बोली—"संध्या बिटिया देख तो कौन है....?"

'देखती हूँ माँ...।"

रसोई घर से निकल कर वह दौड़ी-दौड़ी द्वार पर गई। किवाड़ खोले ? देखा एक नहीं, दस हैं। उनमें से एक बोला—"एक दो...तीन..." और फिर बाजों की 'पें पें' और ड्रम की 'ढम ढम' आरम्भ हो गई। बैंड बजने लगा। बाँसुरी बजने लगी—"तेरे पूजन को भगवान, बना मन-मंदिर आलीशान...!"

एक अजीब सा समा बँध गया। उन बच्चों में जो सब में बड़ा था, वह हाथ में कागज, एक रजिस्टर, और रसीद बुक लिये पास आया...!

वह पूछ बैठी—"तुम सब कौन हो ..?"

"हम अनाथ हैं माँ...। "उस लड़के ने कहा—कलकत्ता के अनाथाश्रम से आए हैं....!"

'ढम ढम ढम पें पें पें ...' बैंड बज रहा था।

अनाथ लड़के ने माँ शब्द का उच्चारण कर जैसे उसे लज्जित

कर दिया था । उसकी आँखें नीचे झुक गई थी । उसने पूछा-"किस लिये आए हो....?"

"चन्दा माँगने के लिये !"

"...क्यों...?"

"अनाथ-आश्रम के लिये । हम सब अनाथ-आश्रम में रहते है...! हमारे माँ-बाप मर गए हैं । हम अनाथ है माँ ! दुनिया में हमारा कोई नही ..।"

"ओह ! बस करो. .मैं समझ गई...।" और फिर वह उनमें से एक सब से छोटे बच्चे की ओर संकेत करती हुई बोली—"वह क्यों रो रहा है...?"

"उसे प्यास लगी है.. " लड़का बोला—"क्या आप हमें पानी पिलायेंगी ...?"

"जरूर ..क्यों नही !" उसके ओंठो पर एक प्यार भरी मुस्कराहट खेल गई—"आओ तुम सब अन्दर आ जाओ । कदम्ब की घनी छाँव तले बैठो । दोपहर के समय इतनी कडी धूप में भी तुम लोग घूमते रहते हो...आराम नही करते क्या...?"

लड़के ने कोई उत्तर नही दिया, और वे सब घर के बड़े से आँगन में आ बैठे ।

मिठ्ठू बोला—"राम राम .बोलो राम राम...!" रोने वाला बच्चा मिठ्ठू के स्वर सुनकर पुलकित हो उठा । वह पिंजरे के निकट जाकर तोते को देखने लगा ।

संध्या रसोई घर से उनके जलपान के लिए गुड ले आई और थोडा-थोड़ा सब को बाँटने लगी, ताकि गुड़ खाकर वे अच्छी तरह पानी पी लें । बच्चे बड़े चाव से गुड़ खाने लगे । वह पानी खीचने लगी । बच्चे बारी-बारी से पानी पीने लगे ।

सब ने जी भर कर पानी पीआ । उनके मुरझाए हुए चेहरे कुछ खिल से गए । वे कदम्ब की छाँव तले बैठकर सुस्ताने लगे । संध्या भी उनके निकट एक कुर्सी पर बैठ गई । बोली—"क्या तुम्हें बैंड से शहनाई जैसे सुर निकालने आते हैं...?"

वे सब मिलकर बैंड से शहनाई का स्वर निकालने लगे । यह उसे रुचा नहीं । वह बोली—"अच्छा रहने दो । वंशी ही बजाओ ...।"

एक बच्चा एक सधे हुए सुर में वंशी बजाने लगा । वंशी की मधुर तान सुनकर वह झूम उठी । कदम्ब के पेड़ के पत्ते भी मानो मस्त हो झूमने लगे । उसका मन खुशी से नाच उठा । वह स्नेह भरी दृष्टि से उन बच्चों को निहारने लगी । फिर उसने कहा—"अब बैंड बजाओ" वे सब मिलकर बैंड बजाने लगे । इसी शोरगुल में भावजों की नींद खुल गई । बूढ़ी माँ जो अब तक यह सारी लीला, अपने कमरे में बैठी देख रही थी, चीखकर बोली—"तुझे कभी चैन नहीं आएगा ! संध्या कभी मुझे आराम से नहीं बैठने देगी । अरी तू इन छोकरों को बाहर निकालेगी भी या नहीं....?"

माँ सुनो, ये कैसी मधुर बाँसुरी बजाते हैं ...।"

"बजाते हैं तेरा सिर..." माँ झिड़ककर बोली—"तू मेरी नाक कटा कर रहेगी संध्या । भगवान करे तू मर जाए ...।"

"तो अभी कूएँ में कूदकर मर जाऊँ माँ...?"

उस समय भावजें उबासियाँ लेती हुई अपने-अपने कमरों से बाहर निकलीं । कुछ अलसाई-अलसाई सी, कुछ उकताई-उकताई-सी, आँखों में नींद का खुमार, चेहरा सेब की तरह लाल । उनमें से बड़ी भावज बोली—"आए संध्या क्या सारा दिन गलगपाड़ा मचाए

रखनी हो । पल भर को चैन नहीं लेने देती...। निकाल क्यों नहीं देती इन बाजे वालों को बाहर ..।"

संध्या कुछ रुखाई से बोली—"वाह क्यों निकाल दूं इन्हें । इन बेचारों ने क्या बिगाड़ा है किसी का ...क्या बेचारे अनाथ भीख माँगना भी छोड़ दें ।..."

छोटी भावज, बड़ी से बोली—"सुनती जाओ इसके चोंचले ।"

"हाँ हाँ सुनती जाओ न ! संध्या गुस्से में बोली । बेचारों ने बैंड क्या बजाया, बाँसुरी क्या बजाई, सब पर गोली चल गई।" फिर वह अनाथ बच्चों से बोली—"जाओ भाई सब चले जाओ यहाँ से, नहीं तो ये तुम्हें कच्चा ही खा जाएँगी ..।"

भावजों के तन-बदन में आग लग गई "सुन रही हो न माँ.. सुन रही हो न लाडली की जबान..यह है सिर चढ़ाने का फायदा.. बड़ी भावज बोली—"आज आने दो मन्नो के पापा को, हम उन्हीं से बातें करेंगे...!"

अनाथ बच्चे चुपचाप घर से बाहर निकलने लगे । संध्या उन्हें देखती रही । माँ उनके पीछे पीछे बाहर चली गई । उसके चेहरे पर एक उदासी छा गई थी। भावजें अपने-अपने कमरों में घुस गईं । आँगन में फिर एक सन्नाटा सा छा गया । एक वह थी, और मिठ्ठू । मिठ्ठू ने उसे पुकारा..."मिठ्ठू...मिठ्ठू" कदम्ब के पत्ते लू के झोंकों से सरसराते हुए काँप रहे थे । उसका जी चाहा वह इस वीरानी से उकता उस गहरे कुएँ में कूद मरे । उस गहरे कूएँ में, जिसका पानी छिछला है । जिसकी मेड़ का पलस्तर जगह-जगह से उखड़ा पड़ा है...!'

रसोई घर से धुआँ निकलना बन्द हो चुका था । अन्दर अंगीठी में आग सुलग रही थी । लेकिन वह रसोई घर में नहीं

गई । वहीं खड़ी रही । उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली । माँ ने घर में प्रवेश करते हुए, उसे रोते देखा तो बड़े प्यार से गले लगा लिया । भावजें खिड़की से बाहर झाँकती हुई सब कुछ देख रही थीं और मुँह बिसोर रही थीं जैसे मानो अब भी यह दूध पीती बच्ची ही है ।'

माँ पुचकारती हुई संध्या को कह रही थी "मत रो बेटी मत रो । ऐसा ही होता है बेटी, कभी मन उदास हो ही जाता है । चलो चुप करो । अब मत रोओ...।"

लेकिन संध्या रोये ही जा रही थी । उसकी नजरें कुएँ के पानी में गड़ी हुई थीं । वह बोली— माँ इस मिट्ठू को कैद से आजाद कर दो ...इसे पिंजरे से निकाल दो ।" और फिर वह ओढ़नी के आँचल से आँखों के आँसू पोंछने लगी । "कुएँ का पानी छिछला क्यों है...?"

ठीकरियाँ

दोपहर के समय उस तंग अँधेरी कोठरी मे दम-सा घुटने लगता था। किसी जमाने में शेरसिंह वहाँ तूड़ी (चारा) रखा करता था। आज उसकी बहू अपने बीमार बच्चे को ले कर उसमें रह रही थी। बात वास्तव में यह थी कि पिछली वर्षा के प्रहारों से उसके घर का एक भाग बैठ गया था। बच रही थी तो एक यह कोठरी, और एक वह कमरा, जिसमें वह स्वयं बहुत दिनों से रहता चला आया था। इसी कोठरी मे कभी उसके माता-पिता और फिर पत्नी ने प्राण त्यागे थे। यहीं इस कमरे में एक दिन उसका जवान बेटा इस दुनिया से मुँह मोड़ गया था। यह कमरा मरने वालों के लिए था और शेर सिंह स्वयं अपने आप को भी मरने वालों मे ही गिनता था। इसलिए वह वहीं एक चारपाई पर लेटा अतीत की स्मृतियों मे खोया रहता। तूड़ी वाली घुप अँधेरी कोठरी मे बहू अपने रोगग्रस्त बच्चे को लिये पड़ी रहती। पति को मरे चार महीने बीत चुके थे। स्वयं उसका जीवन घुल-घुल कर समाप्त होने के लिए उस कोठरी की चारदीवारी मे घिर गया था। शेर सिंह बहू की मजबूरियों को समझता था। जेठ-आषाढ़ की गर्मी बेचारी इस तंग अँधेरी कोठरी में बैठ कर कैसे काटती है, फिर बीमार बच्चे के साथ.....? मुसीबत है बेचारी के लिए। उसने बहू से कई बार बड़े कमरे मे आ जाने को कहा था, लेकिन वह उस कमरे मे आने से डरती थी। उस कमरे को वह बड़ा ही मनहूस समझती थी। उस कमरे मे जा कर फिर कोई रोगी बचता नहीं था। कई दिनों पहले उसने उस कमरे में अपने

सास को मरते देखा था और फिर अपने पति को। वह डरती थी, कहीं उस मनहूस कमरे की चारदीवारी, जो प्रेत बन कर स्थिर खड़ी है, उसके बच्चे का भी गला न घोट दे।

यदि शेर सिंह का वश चलता तो वह अपने कमरे को, जो ढह चुका था, फिर से खड़ा कर देता। जहाँ नूड़ी वाली कोठरी जैसा अँधेरा न होता और न दम घोंटने वाली तंगी। फिर वह रोग-ग्रस्त बच्चे के साथ नये कमरे में रहती।

कोठरी में उसकी तकलीफ उससे देखी नहीं जाती थी। किन्तु कमरा खड़ा करने के लिये रुपये चाहिए थे, वे कहाँ से आते..! जो थोड़े-बहुत रुपये पास थे वे लड़के के इलाज में लग चुके थे। हाथ तंग था और काम होना मुश्किल था।

शेर सिंह पहले गाँव में लोहार का काम करता था। किसानों के हल, खुरपी और दराँती इत्यादि की मरम्मत करता, और फसल के बाद जो अन्न-दाना उसे मिलता उसी से गुजर-बसर चलती। किन्तु जब से बुढ़ापे ने उसे अपने वश में कर लिया था, उसने यह काम छोड़ दिया था. गाँव में और कई लोहार पैदा हो गये थे, जिन्होंने गाँव का सारा काम सम्भाल लिया था। बेटा नौकरी की तलाश में परदेश चला गया था और जो कुछ वह वहाँ से भेजता, उससे उसका गुजारा चलता। आखिरी उम्र में उसे केवल दो समय की रोटी चाहिए थी, जिन्हें वह खुद सेक लेता था। कभी पास-पड़ोस से उसे पकी-पकाई भी मिल जाती थी। दो समय का भोजन पा, वह राम का नाम लेता। इसी प्रकार अनेक दिन बीत गये।

एक बार हमेशा की तरह जब बेटे की ओर से रुपये न आये तो उसे चिन्ता हुई। एक महीना बीता, फिर दूसरा भी बीतने को

)

आया। फिर उसे पता चला कि बेटा बीमार है। गाँव के महाजन से कर्ज ले कर वह भी बेटे की सुधि लेने परदेश चला गया। वहाँ पहुँच कर उसने बेटे को बहुत बुरी हालत से पाया। वह पहले से आधा भी नहीं रह गया था। महीने-भर से अस्पताल में पड़ा था, जब बूढ़ा शेर सिंह वहाँ पहुँचा, अस्पताल वालों ने उसे अपने बेटे को किसी सेनीटोरियम में ले जाने की राय दी। क्योंकि वह क्षय रोग से पीड़ित था। शेर सिंह बन्ता सिंह को गाँव ले आया। यहाँ उसका इलाज होता रहा। बुढ़ी बेचारी कई महीनों से उसकी सेवा में दिन-रात एक किये हुए थी। उसे खाना-पीना भी नहीं सूझता था, किन्तु पैसों के अभाव में न तो बन्ते को अच्छी दवाएँ मिल सकीं और न पौष्टिक भोजन, और एक दिन वह इस घर में, जिसमें कि तीस वर्ष पहले उसने जन्म लिया था, मौत की गहरी नींद सो गया।

उसे मरे कई महीने बीत चुके थे। बुढ़ी उसी की याद में आँसू बहाती घर की उसी अँधेरी कोठरी में रहती थी। शेर सिंह से उसका दुःख नहीं देखा जाता था। प्रायः वह बहू को सान्त्वना देता, और समझाता और कभी उसे मैके चले जाने की राय देता, जहाँ कि उसका अपना कोई नहीं था, और फिर वह स्वयं किसी गहरी चिन्ता में खो जाता। कभी घर के किसी कोने में छिप कर वह खुद भी आँसू बहा लेता। इधर जब से जेठ-आषाढ़ की गरमी पड़ने लगी थी,, चारे वाली कोठरी मे रहना मुहाल हो गया था, ऐसा शेरसिंह अनुभव कर रहा था। किन्तु बुढ़ी उस कोठरी में कैसे दिन काट रही थी, यह तो वही अच्छी तरह जानती थी। फिर भी वह उसी कोठरी में रहना चाहती थी, जिसमें रहते उसे दो-ढाई महीने बीत चुके थे। इधर चार वर्ष का मुन्ना बीमार हो गया था। उसका इलाज गाँव के हकीम जी कर रहे थे। हकीम

जी नोटों के वजन के बराबर दवा तोल कर देने वाले एक आरो-
कारी आदमी थे। वे कुछ सस्ती दवाएँ भी रखते थे। किन्तु उन
दवाओं के सेवन से रोगी अच्छा हो जाएगा इसका जिम्मा वे नहीं
लेते थे। चन्द दिनों से बच्चे की तबीयत कुछ अधिक खराब
थी। बूढ़े शेर सिंह को बड़ी चिन्ता थी। एक बेटा था, बुढ़ापे का
सहारा; सो उसे काल ग्रस गया। क्या अब उस पुत्र की इस अकेली
निशानी को भी मौत मिटा कर रहेगी? वह सोच रहा था, आखिर
मेरे घर से इस मौत को इतना बैर क्यों है। अच्छा हो यदि
वह हम सब को एक ही दिन समाप्त कर डाले। तब किसी को,
किसी का भी दुख नहीं रहेगा।

दोपहर के समय शेर सिंह अपनी चारपाई पर लेटा काँपते
हाथों से पंखा झलते-झलते अतीत और घर की इस वर्तमान अवस्था
पर विचार कर रहा था। अतीत उसे इतना कटु नहीं जान पड़ता
था, जितना कि वर्तमान। आज उसे अनेक परेशानियों ने घेर रखा
है। वह अस्वस्थ्य है, पोता बीमार है और हाथ तंग है। उस
समय बालक कोठरी में रो रहा था। बुई उसे गोद में उठाए
लोरियाँ-सी देती कोठरी का चक्कर काट रही थी। यह सब देख
कर शेर सिंह की आँखे भर आयी और उसने अपना मुँह दूसरी
ओर फेर लिया।

सहसा बाहर किसी ने द्वार खटखटाया और शेर सिंह चौंक
उठा। दरवाजा खटखटाने वाले ने बुई का नाम लेकर पुकारा—
"विशन कौर।"

बुई कोठरी में घूमती-घूमती रुक गयी। शेर सिंह ने कहा—
"बेटी, देख तो कौन है?"

बुई बालक को गोद में लिये हुए द्वार तक गयी। किवाड़

खोल तो देखा, सामने पोस्ट-मैन खड़ा है। बुई को देखते ही वह बोला—"तुम्हारे नाम का मनिआर्डर है बहन !"

"कितने रुपये हैं . . . कहाँ से आये हैं ?" उसने कुछ उत्सुकता से पूछा ।

इतने में शेरसिंह भी कमरे से बाहर निकल आया था। उसने भी पोस्टमैन से कुछ उत्सुकता से पूछा—"यह मनिआर्डर कहाँ से आया है भाई, कौन हमें रुपये भेजेगा ?"

पोस्टमैन ने कहा—"टाटानगर से आया है ।" शेर सिंह ने बुई की ओर देखा और बुई ने घूँघट की आड से वृद्ध श्वसुर की ओर। फिर जैसे टाटानगर से आने वाले इन रुपयों की सारी बात उनके समझ में आ गयी ।

शेर सिंह ने गहरी साँस ली और बोला—"कितने रुपये हैं ?"

"तीन सौ—" पोस्टमैन बोला—"इसके लिए बुई बहन को खुद बड़े डाकखाने में हाजिर होना पड़ता । लेकिन मैंने सोचा बेचारी धूप में यों ही हलकान होती फिरेगी। इसलिए अपनी जिम्मेवारी पर खुद ही ले आया हूँ. . . .।"

"बडी कृपा की आपने भाई ।" शेर सिंह बडी कठिनाई से बोल पाया ।

पोस्टमैन ने मनिआर्डर फार्म बुई की ओर बढ़ाते हुए कहा—"इसमें, यहाँ अँगूठा लगाना पड़ेगा बहन।" और उसने नोटों का एक पुलिन्दा अपनी जेब से निकाला और उन्हें गिनने लगा। इसी बीच वह वृद्ध से बोला—"रुपयों की गवाही कौन देगा ?" फिर वह स्वयं ही बोला—"रुपये-पैसों से सब की नीयत में फर्क नहीं आता, यह तो मैं जानता हूँ । लेकिन काम सरकारी है क्या करूँ । अच्छा बाबा, आप ही गवाही की जगह अँगूठा लगा दें । दस-दस के

तीन नोट गिन कर शेष दो-चार नोट डाकिये ने अपनी जेब में डाल लिये। फिर उसने अपनी जेब से एक घिसा-पुराना फाउन्टेन-पेन निकाला और उसकी स्याही से बहू का दायाँ अँगूठा रंगते हुए बोला—"यहाँ, यह जो जगह खाली है, यहाँ अँगूठा लगा दो।"

बहू कागज पर झुकी और जब वह अपने काँपते हुए हाथों से अँगूठा लगाने लगी तो आँसुओं की कई बूँदें उसकी आँखों से उस कागज पर टपक पड़ीं। वह अँगूठा लगा कर फिर वहाँ बैठी न रह सकी। व्याकुल और परेशान-सी फौरन अपनी कोठरी में चली गयी। रोगी बच्चा एक बार जोरों से चीखा, उसने उसे अपनी छाती से चिपटा लिया। बच्चा रोता रहा और बहू की आँखों से भी किसी गहरे जख्म के खून की तरह आँसू बहते रहे।

उसी समय शेर सिंह खँखारता हुआ कोठरी में आया। उसने देखा, बहू ओढ़नी के आँचल से अब भी अपने आँसू खुश्क कर रही है। न जाने अभागिन और कितना रोएगी। वह कुछ देर तक वहाँ मौन खड़ा सोचता रहा। फिर बोला—"बहू, तुम रोती हो, रोने से क्या दु:ख मिट जाया करते हैं? अब किसलिए रोती हो, किसके लिए रोती हो, बोलो? जो होना था सो हो गया। जिसके लिए रोती हो, अब वह लौट कर तुम्हारे पास नहीं आएगा। रो-रो कर अपना जी हलकान न करो। चुप हो जाओ और लो यह रुपये रखो। यह है तुम्हारे पति के जीवन का सारा सरमाया, जो वह तुम्हारे और तुम्हारे बच्चे के लिए अपनी मौत के बाद छोड़ गया है। जिन्दगी और जवानी के दिन जिसने मिल की मशीनों से उलझ-उलझ कर बिताये थे, यह है उसकी कमाई का हिस्सा, जो सारे कर्जों में कट कर बाक़ी तुम्हारे हिस्से आया है। तीन सौ रुपये।" शेरसिंह के स्वर काँप रहे थे, 'तीन सौ रुपये' बहू ने ये शब्द सुने ...और पुन: इन्हीं शब्दों को उसने अपने मन से दोहराया,

'तीन सौ रुपये" वृद्ध श्वसुर के स्वर भी निरन्तर उसके कानों में गूंज रहे थे । तीन सौ रुपये...यह है पति की जिन्दगी का सरमाया.......उसकी कमाई, जिसके पीछे उसने घुल-घुल कर जान दी । तीन सौ रुपये—उसके कलेजे में एक घूंसा सा लगा । वह फफक कर रो उठी । साथ ही बैन करने लगी । ये रुपये किस लिए उसके पास आये थे । क्या बन कर और क्या ले कर । क्या उसके मन के भावों को कुरेदने आये थे या उसकी असमर्थता का मजाक उड़ाने । इन रुपयों ने अतीत की घटनाएं उसके सामने कर दी थीं, जिनकी स्मृति से उसका कलेजा मुंह को आने लगता है । ये रुपये कैसी मनहूस याद ले कर आये थे । जिसने उसे फिर वही अतीत के भयावह अन्धकार में ले जा कर खड़ा कर दिया था । जहाँ श्मशान जैसी शून्यता थी । चिताओं की ज्वाला थी और धुआँ था । हाँ, कभी-कभी किसी के रोने, चीखने और विलाप करने का स्वर सुनाई पड़ जाता था । मृत पति का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूम रहा था । वह मुरझाया हुआ शुष्क पीला चेहरा, वह अटल निद्रा में निश्चिन्त भाव से मुंदी हुई आँखें, जिसकी पलकों के पीछे मानो दुःख और क्लेश, पीड़ा और वेदना सभी शरमा कर छिप-से गये थे। वही चेहरा उसे रुला रहा था ।

शेर सिंह फिर बोला, "वह अभागा तो घुल-घुल कर मर गया। उसे दवा न मिल सकी । दवा के लिए पैसे नहीं थे । काश, कि ये रुपये उसकी जिन्दगी ही में उसे मिल जाते ! यह उसी की कमाई थी, उसी के काम आती । इससे उसका कुछ और इलाज हो जाता तो शायद अच्छा ही हो जाता ।" आगे बढ़ कर शेर सिंह ने वे नोट चारपाई पर रख दिये और माथा झुकाए कोठरी से बाहर निकल आया । बहू रोती रही । बाहर दरवाजे के निकट शेरसिंह कुछ क्षणों के लिए रुका और कहने लगा—"बेटी, क्या इतने रुपयों से

घर का एक नया कमरा बन जाएगा ?"

उत्तर में केवल सिसकियाँ ही सुनकर वह बोला—"नहीं, अब तीन सौ से घर का कोई कमरा नहीं बनता। शायद दीवार ही खड़ी की जा सके। कल मुन्ने को शहर वाले डाक्टर के पास ले जाऊँगा। यदि यह जीता रहेगा तो शायद एक दिन इस घर की जगह महल खड़ा करे! दिन फिरते देर नहीं लगती और उसकी आँखों से आँसुओं की बूँदें 'टप्-टप्' नीचे गिर कर मिट्टी में विलीन हो गयीं।

फूल मुरझा गए

न जाने कब किसी का यह कहने को जी चाहता होगा कि मैं निशा की धूमिल व्यथित छाया में, एकांत सागर-तट पर विहार करने निकल जाता हूँ, और वहाँ बिखरी हुई रेत पर, जो अधखिले चाँद की रुपहली चाँदनी में चाँदी की तरह चमका करती है, घोंघे, सीप और मोती तलाश किया करता हूँ···! किन्तु मुझे वहाँ गोल-मटोल, छोटे, चिकने पत्थरों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। दूर से वेग में बही आती उत्तंग उत्ताल तरंगें रह-रहकर एक चट्टान से टकराती हैं। छप्-छप् जैसी एक विचित्र संगीत-लहरी, निस्तब्धता में क्रीड़ा करने लगती है। फिर कुछ ऐसा भास होने लगता है, जैसे सिंधु की लोल लहरों पर एक बजरा मंद-मंथर गति से बह रहा है। उस बजरे में बैठा कोई मृदु-मंजुल स्वरों में बाँसुरी बजा रहा है। डफ भी बज रही है, और कोई व्यथित स्वरों में गा भी रहा है। मैं दूर से बही आती हुई उस संगीत-लहरी को सुनता हूँ और मुझे कुछ याद आने लगता है, जैसे—'उस बजरे में मिश्र देश की अनुपम सुंदरी किल्यूपिट्रा बैठी थी···वह बजरा जगमगाते हुए रंग और सुनहले चमकीले सिंहासन की तरह जल की सतह पर चमक रहा था। और, ज्वाला की लौ की भाँति दीप्तिमान था···।'

और जब मैं कुछ देर के बाद सागर तट से हटकर उन ताड़ और नारियल के झुंडसे बसे ग्रामों की ओर पलटता हूँ, तब देखता हूँ—नारियल और ताड़ के ऊँचे-ऊँचे पेड़ हवा में झूम-झूमकर आकाश से कुछ बातें कर रहे हैं। मैं उन्हें कान लगाकर सुनने

का प्रयत्न करता हूँ। जैसे वे कह रहे हों—मौनसूनी हवाओं के झोकों में जो नमी और गरमाहट रहती है, वह पहाड़ी बर्फीली हवाओं के झोकों में कहाँ से आए और चीड़पइतल तथा देवदारु के पेड़ नीचे की दुनिया की गरमी कहाँ से लाएं? किंतु उस समय तो मनजीत कुछ अनमने स्वर में बोला—दीप, मैं जितने दिन लंका में रहा, रोज सागर-तट पर जाता रहा। अकेला···एकांत···! रात के समय मैंने समुद्र देखा, आकाश देखा, किंतु आकाश की छाया समुद्र की सतह पर नहीं देखी। रात के समय कभी समुद्र की लहरें अधिक शोर पैदा करती हैं। उस भयानक गर्जन को सुनकर दिल काँप उठता है दीप···!'

'ओह···! बड़ा नाजुक है तुम्हारा दिल'—वह बोली—'काँप जो उठता है लहरों की गुप-चुप सुनकर! क्या तुमने सागर-तट पर एकांत बैठकर कभी जल-परियों का विहार नहीं देखा···उनका संगीत कभी नहीं सुना···?' 'न···!' इंकार के अंदाज में माथा हिलाते हुए वह बोला—'मेरी आँखों को अब परियाँ दिखाई नहीं देतीं, मेरे कान अब परियों के संगीत नहीं सुनते'। और वह कुर्सी से उठकर कमरे की खिड़की के सामने जा खड़ा हुआ। बाहर जैतून के एक पौधे पर शिशिर छाया हुआ था। वह लुंडमुंड खड़ा हवा के झोंकों से काँप उठता था।

'ओह! बड़ा कोमल मन है तुम्हारा, जो लहरों की गुपचुप सुनकर सिहर उठता है!' 'हूँ!' मनजीत सोचने लगा—क्या सचमुच मेरा दिल लहरों की गुपचुप सुनकर काँप उठता है···? फिर जैतून से कोई क्या पूछे और इसे क्या कहे···वह क्यों वायु का स्पर्श पा काँप उठता है···? वसंत में इसने बहार के कितने गीत गाए होंगे···और अब वह तत्वहीन-सा गुमसुम क्यों खड़ा है···? मजबूर है शायद इसीलिए···! और मैं सागर की गुपचुप सुनकर

डर जाता हूँ··· नहीं तो—डरता नहीं शरमा जाता हूँ। लहरों के संग मैं कभी सागर के अन्तराल में नहीं गया। नहीं तो मैं अपनी मुट्ठी में बहुत सारे मोती भर लाता···!

उसने मुड़कर दीप की ओर देखा। वह खड़ी मुस्करा रही थी—'पागल हो तुम···भावुक···!' कहती-कहती वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

वह फिर मुँह फेर कर जैतून के पौधे की तरफ देखने लगा। यह निष्ठुर भी भावुक है, और पागल भी, जो हवा के साधारण झोंके से भी काँप उठता है। अपने वे पुराने गीत क्यों भूल गया है यह? जिन्हें यह पौ फटने से पहले चिड़ियों के स्वर में स्वर मिला, झूम-झूम कर गाया करता था। जिसे यह सन्ध्या की झुकी हुई म्लान छाया में गुनगुनाया करता था और जब रात को चाँदनी छिटक जाती, तब भी गुनगुन करता झूमा करता था। किंतु जब कभी काली घटाओं को मदिरा पी लेता, तब मस्त होकर शीतल हवाओं के गले लगता; पर अब जैसे मदहोश है, बिल्कुल मदहोश···!

दीप निकट आकर उसका कंधा छूते हुए बोली—'क्या देखने लगे तुम···?'

वह बोला—'मैं सोच रहा था, यदि हरी-हरी घास पर पेड़ के पत्ते, यानी सूखे पत्ते बिखरे पड़े रहने दिए जाएँ, तो अच्छा लगता है। मैं जब कभी ऐसी घास पर चलता हूँ, तो पत्तों को अपने पाँव तले नहीं रौंदता···लेकिन दीप, तुम्हारी वाटिका में मुझे जैतून का एक भी पत्ता बिखरा पड़ा दिखाई नहीं देता। देखो वे युकलिपटिस के, ऊँची हवा में साँस लेनेवाले पत्ते, कितने खुश दिखाई देते हैं।'

'हाँ बहुत खुश दिखाई देते हैं'—बात का रुख बदलते हुए वह बोली—'चलो चाय का समय हो चुका है। ऊषी और कुलवंत भी आती ही होंगी। हाँ! देखो उनसे शरमाना नहीं।'—वह हल्का-सा व्यंग्य कर मुस्कराने लगी।

'कुलवंत को देखकर मुझे शर्म तो जरूर आएगी'—वह दीप की ओर घूमकर बोला—'लज्जा बड़ी पवित्र होती है दीप···और हाँ कुलवंत तो अब तुम्हारी तरह बड़ी चालाक हो गई होगी, वह बहुत बातें करना सीख गई होगी। किन्तु मुझे तो यह जैतून का पौधा अच्छा लगता है, जो बेचारा मौन खड़ा रहता है···!'

'यह सदा मौन रहता है ···।'

'नहीं; हँसता और गाना भी होगा। कोई चुनके से चाँदनी रातों में इसके गले भी आकर मिलना होगा। इसके एक नहीं कई साथी होंगे।'

'होंगे'!—दीप खीझ कर बोली—'ओ···! कैसी व्यर्थ की बातें करने लगे तुम···।' और उसका हाथ पकड़कर खींचते हुए उसे कमरे से बाहर ले चलने का प्रयत्न करने लगी—'चलो, हटो यहाँ से···'

सहसा पीछे कुछ पाँवों की आहट हुई और वह मुड़कर पीछे देखने लगी। सामने खड़ी थी कुलवंत और ऊषी। मधुर स्वरों में अभिवादन हुआ, और फिर उनके चेहरों पर मुस्कराहट के फूल खिल उठे। दीप मनजीत की ओर इशारा करती हुई उनसे बोली—हमारे कविजी का दिमाग इस समय कविता रच रहा है। तनिक धीरे हँसिए। वह देखिए बेचारा जैतून कैसी प्रशांत मुद्रा में खड़ा है। एकांत, एकाग्र-सा मौन···न जाने किसके ध्यान में खोया-सा···!!' सहसा मनजीत पीछे मुड़कर देखने लगा। कुलवंत खड़ी है नजरें झुकाए। एक दिन इन आँखों की पवित्रता ने कहा था—

'इन्हें सुन्दर बनाया है मैंने, मेरा नाम प्यार है, प्यार—!'

दीप हर्ष से खिल उठी—'ओह! इन्तजार की भी हद हो गई है, खूब रास्ता दिखाया···!'

वे झुकी हुई स्नेह सिक्त आँखें ऊपर उठीं उन आँखों को

पवित्रता हँस पड़ी—'क्षमा करो दीप, देर तो अवश्य हुई।' किंतु झट वह मनजीत से संबोधित हो उससे पूछ बैठी—'तुम कब आए...?'

एक भावमयी मुस्कान उसके होठों पर खिल उठी।

जब किनारे की रेत सूखी रहती है, तब ज्वार-भाटा आता है। और उठता हुआ तूफान रेत पर छा जाया करता है...!

मनजीत ने उत्तर दिया—'कल ही आया हूँ कुलवंत! तुम अच्छी तो हो...?'

'हूँ...!' संकेत के रूप में उसकी आँखों की पुतलियाँ फिर नीचे झुक गईं।

दीप कहने लगी—'चाय का समय हो चुका है। चलो बाहर बरामदे में बैठा जाय...।'

वे सब बाहर बरामदे में बिछी हुई कुर्सियों पर आ बैठे। वातायन की हरी-हरी घास पर उस समय लीची के पेड़ों की धूमिल छाया तिरछी पड़ रही थी। और कँटीली चंपा के सौरभ से वातावरण सुवासित था।

चाय की गरम प्यालियों की चुस्कियों के साथ उनकी वार्ता मौसम से आरंभ हुई। ऊषी को कुछ सर्दी थी। उसने सफेद महीन रेशमी रूमाल से नाक पोंछते हुए कहा—'आज हवा में कुछ खुनकी है...।'

दीप कहने लगी—'मुझे ऐसे अवसर पर सदैव शिमला की सांझ याद आ जाती हैं, जब सफेद बादलों के टुकड़े रुई के गालों की तरह पहाड़ की चोटियों को छूते आकाश पर उड़ा करते हैं।'

कुलवंत चुप रही। जब बात मौसम से शुरू हुई तो जिक्र पहाड़ की चोटियों का होने लगा। फिर स्नोफॉल, ग्लेशियर और बड़ी-बड़ी झीलों की चर्चा पर आकर यह वार्ता एक नया रूप धारण करने लगी। नदियाँ, पहाड़ों से निकलती हैं और सागर में समा जाती है, सो बातें भी पहाड़ की चोटियों से होकर रामेश्वरम के तट तक

पहुँची। साथ ही पुरी के किनारे और मालाबार की घाटियों का वर्णन होने लगा। मालाबार की पहाड़ियों पर बर्फ नहीं जमती, लेकिन उत्तर में हिमालय की घाटियाँ बर्फ में ढँक जाती हैं। शीतल हवाओं का स्पर्श पा जंगल में चिनार के पेड़ गाया करते हैं···!

ऐसे अवसर पर कुलवंत को वह रात स्मरण हो आई होगी, जब डैडी ने एक लाल मुँहवाले बंदर की बड़ी रोचक कहानी सुनाई थी। जो प्रायः आधी रात बीत जाने पर, और घर के लोगों के सो जाने के बाद आतिशदान के पास आकर लेटा रहता था। उसके चेहरे पर मुस्कराहट खिल रही थी।

जब समुद्र की चर्चा होने लगी, तो मनजीत से कुछ प्रश्न किए गए। उसने सागर-तट पर खड़े होकर दूर क्षितिज तक जल का एक तूफान देखा है। तट पर मचल-मचल कर आती, हँसती और नाचती हुई लहरों को भी देखा है। सागर में डोलती और डगमगाती हुई नौकाओं पर विहार भी किया है, लेकिन उसने सागर की सीमाओं को आँकने का यत्न कभी नहीं किया। उसकी गहराइयों में भी पैठने का प्रयत्न कभी नहीं किया। यद्यपि वह जानता है कि इसमें मोती हैं। सागर की बातें उसने दो शब्दों, केवल दो शब्दों में बयान कर दी।—'सवेरे सागर शान्त रहता है। संध्या को विरक्त और रात को चीखा-चिंघाड़ा करता है। कभी रोता भी है···!'

'है···सागर रोता है···?'—कुलवंत ने वह आश्चर्यजनक बात सुनकर कुछ जिज्ञासा प्रकट की।

'हाँ, सागर रोता भी है। जब रात को आकाश पर बादल नहीं होते, पथ-रत तारे झूमते-गाते, निरंतर अपनी मंजिल की ओर बढ़ते हैं, तब सागर केवल अपने छोरों से टकराकर रोया करता है। यह बात सच है।' और उसने कुलवंत की आँखों में झाँका। शायद यह आँखें अब नहीं रोतीं। रोना तो आँखों ही को आता है। परंतु

मन भी तो कभी रोया करता है। मन जैसे वेदना संजोए अंदर ही अंदर रोता है, सागर भी रोता है!

ऊपी ने कहा—'कवियों की भाषा में ही यह बातें अच्छी लगती हैं।'

कुलवन कहने लगी—'कवियों की भाषा में जीवन होता है, कला होती है और सौंदर्य...!'

बात कविता और शैली पर चल पड़ी। इसमें कुछ भारतीय और पश्चिमी कवियों पर हलकी-सी आलोचना हो गई। टैगोर, इकबाल तुलसी और भाई गुरदास तक के नाम आ गए। भाई गुरदास जी पंजाबी के महान् संत कवि शेक्सपियर के समकालीन थे। अब कुलवंत ने मुंह खोला और वह थोड़ी बातों ही में बहुत कुछ कह गई। लोगों की नजर में शेक्सपीयर संसार का एक महान् नाटककार और कवि था।

दुनिया मिल्टन को एक रहस्यवादी संत कवि के रूप में मानती है।

ड्राइडन, पोप और जानसन, अपनी शुष्क बोझिल कविता, किंतु गूढ़ विचारों के नाते महान थे।

वर्डसवर्थ प्रकृति का पुजारी था और कॉलरिज अलौकिकता का।

शेली बागी था। उसमें मनुष्य मात्र की स्वतन्त्रता की भावना प्रबल थी।

कीट्स सबसे अधिक प्रतिभाशाली कवि था।

टेनीसन के काव्य में, उसके सुंदर शब्दों के कारण बड़ी मधुरता थी।

नाटकीय ढंग की कविताएँ करनेवाला ब्राऊनिंग बड़ा दुरूह था।

मनजीत अनिच्छा से उनकी भावोत्पादक बातें सुनता रहा। वे संसार भर के सारे कवियों पर कुछ-न-कुछ कह देने पर तुली हुई

थी। खैय्याम की रुबाइयाँ उन्हें पसंद थीं। पुश्किन उन्हें प्रिय था। दूसरी शताब्दी के चीनी कवियों की कविताएँ उन्हें अच्छी लगती थीं। वे अपने-अपने विचार व्यक्त किए जा रही थीं। शील ने अपने जीवन में कभी गायों का दूध नदियों में, बाल्टियों में जमते नहीं देखा, वह उनकी चर्चा कर रही थी।

मनजीत मौन उनकी बातें सुने जा रहा था। दीप ग्रेजुएट है और शील एम० ए०। वह ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी है। कुलवंत बी० ए० फाइनल में है और वह स्वयं केवल एक साहित्यिक। उसने बड़े-बड़े कवियों के नामों और उनकी रचनाओं की अपेक्षा सागर के दिल की धड़कनें अधिक सुनी हैं। लहरों का संगीत सुना है, हवाओं की बातें सुनी हैं। वह अंगरेजी में लिखी गई कविताएँ नहीं पढ़ सकता, लेकिन आँखों की भाषा पढ़ सकता है। उसने कुलवंत की आँखों में पढ़ा है।

'परिस्थितियाँ मनुष्य को सदैव बदल देती हैं..!'

सच है! किंतु प्यार तो नहीं बदलता। प्यार के जीवन में पलनेवाली आशाएँ तो नहीं बदलतीं। कुलवंत यदि बी० ए० छोड़ एम० ए० हो जाए तो क्या वह किसी साहित्यकार के जीवन से आगे निकल जाती है..। सागर की लहरें, सागर से अधिक प्रबल, विस्तृत और विशाल होती हैं..यह भी वह जानता है।

उसने कुलवंत की आँखों में फिर झाँका। आँखों का यह छोटा-सा सागर, इसमें भी लहरें उठती हैं। किंतु यह लहरें शोर पैदा नहीं करतीं। वह उन्हें वार्ता में लीन देखकर कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ। जब वे यह कह रही थीं कि इलियट पक्षियों पर कविताएँ किया करता है, और बॉयरन अपनी प्रेमिका के केशों और लटों की प्रशंसा किया करता था, तब वह चुपचाप वहाँ से खिसककर फिर कमरे की खिड़की के निकट आ खड़ा हुआ।

मन भी तो कभी रोया करता है। मन जैसे वेदना संजोए अंदर ही अंदर रोता है, सागर भी रोता है!

ऊपी ने कहा—'कवियों की भाषा में ही यह बातें अच्छी लगती हैं।'

कुलवंत कहने लगी—'कवियों की भाषा में जीवन होता है, कला होती है, और सौंदर्य···!'

बात कविता और शैली पर चल पड़ी। इसमें कुछ भारतीय और पश्चिमी कवियों पर हलकी-सी आलोचना हो गई। टैगोर, इकबाल, तुलसी और भाई गुरदास तक के नाम आ गए। भाई गुरदास जी पंजाबी के महान् संत कवि शेक्सपियर के समकालीन थे। अब कुलवंत ने मुंह खोला और वह थोड़ी बातों ही में बहुत कुछ कह गई। लोगों की नजर में शेक्सपीयर संसार का एक महान् नाटककार और कवि था।

दुनिया मिल्टन को एक रहस्यवादी संत कवि के रूप में मानती है।

ड्राइडन, पोप और जानसन, अपनी शुष्क बोझिल कविता, किंतु गूढ़ विचारों के नाते महान थे।

वर्ड्सवर्थ प्रकृति का पुजारी था और कॉलरिज अलौकिकता का।

शेली बागी था। उसमें मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता की भावना प्रबल थी।

कीट्स सबसे अधिक प्रतिभाशाली कवि था।

टेनीसन के काव्य में, उसके सुंदर शब्दों के कारण बड़ी मधुरता थी।

नाटकीय ढंग की कविताएँ करनेवाला ब्राऊनिंग बड़ा दुरूह था।

मनजीत अनिच्छा से उनकी भावोत्पादक बातें सुनता रहा। वे संसार भर के सारे कवियों पर कुछ-न-कुछ कह देने पर तुली हुई

थी। खैय्याम की रुबाइयाँ उन्हें पसन्द थीं। पुश्किन उन्हें प्रिय था। दूसरी शताब्दी के चीनी कवियों की कविताएँ उन्हें अच्छी लगती थीं। वे अपने-अपने विचार व्यक्त किए जा रही थीं। शील ने अपने जीवन में कभी गायों का दूध नदियों में, बाल्टियों में जमते नहीं देखा, वह उसकी चर्चा कर रही थी।

मनजीत मौन उनकी बातें सुने जा रहा था। दोष ग्रेजुएट है और शील एम० ए०। वह ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी है। कुलवंत बी० ए० फाइनल में है और वह स्वयं केवल एक साहित्यिक। उसने बड़े-बड़े कवियों के नामों और उनकी रचनाओं की अपेक्षा सागर के दिल की धड़कनें अधिक सुनी हैं। झरनों का संगीत सुना है, हवाओं की बातें सुनी हैं। वह अंगरेजी में लिखी गई कविताएं नहीं पढ़ सकता, लेकिन आँखों की भाषा पढ़ सकता है। उसने कुलवंत की आँखों में पढ़ा है।

'परिस्थितियां मनुष्य को सदैव बदल देती हैं..!'

सच है! किंतु प्यार तो नहीं बदलता। प्यार के जीवन में पलनेवाली आशाएँ तो नहीं बदलतीं। कुलवंत यदि बी० ए० छोड़, एम० ए० हो जाए तो क्या वह किसी साहित्यकार के जीवन से आगे निकल जाती है..। सागर की लहरें, सागर से अधिक प्रबल, विस्तृत और विशाल होती हैं..यह भी वह जानता है।

उसने कुलवंत की आँखों में फिर झाँका। आँखों का यह छोटा-सा सागर, इसमें भी लहरें उठती हैं। किंतु यह लहरें शोर पैदा नहीं करतीं। वह उन्हें वार्त्ता में लीन देखकर कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ। जब वे यह कह रही थीं कि इलियट पक्षियों पर कविताएँ किया करता है, और बॉयरन अपनी प्रेमिका के केशों और लटों की प्रशंसा किया करता था, तब वह चुपचाप वहाँ से खिसककर फिर कमरे की खिड़की के निकट आ खड़ा हुआ।

कुलवंत भी धीरे से उठकर उसके पीछे आ खड़ी हुई और उसके कंधे पर हाथ रख दिया। वह कहने लगी—'मनजीत, कितनी कृत्रिमता है इस जीवन और इसकी भावनाओं में, जो धूएँ की तरह बनते, बलखाते हवाओं में खो जाते हैं !'

उसने घूमकर उसकी ओर देखा—'कुलवंत !' वह अब भी उसके मन की बात समझती है। यह जानकर उसे बड़ा संतोष हुआ। वह मुँह से कुछ बोला नहीं। मौन रहा। सोचता रहा, संतोष कभी जीवन में रचकर मानव को देवता बना देता है और कभी प्रपंच बनकर उसे नष्ट कर देता है। कुलवंत आज उससे दूर है। वह उससे बहुत दूर जा चुकी है। अब तो वह उसके जीवन के किनारों से टकरानेवाली एक लहर मात्र है, किंतु कितनी प्रबल, कितनी विशाल..! उसने फिर मुड़कर उसकी ओर देखा—'क्षमा करो कुलवंत..मुझे दुःख है, मैं तुम्हारे ब्याह में नहीं आ सका। और वे तुम्हारे पति महोदय, उनसे भी भेंट नहीं हुई। दीप से सुना था, प्रोफेसर महोदय कोई थीसिस लिख रहे हैं। विषय क्या है..?' सहसा उसकी आँखें बाहर जैतून के उसी लुंडमुंड पौधे की ओर घूम गईं !

'तुम कैसी व्यर्थ और अनर्थ बातें करने लगे जीत !

'तुम कितने जरठ हो···कितने कठोर हो···!' स्वयं उसका मन अंदर-ही-अंदर रो उठा। जैतून के पौधे से हटकर उसकी नजरें शेफाली के पौधे पर चली गईं। वह अपनी एक कविता याद करने लगा।

'अपने इन जरठ हाथों से मैंने आधी रात के समय एक कली तोड़ी थी। शोक ! उसमें कोई सुगंध नहीं थी। और मैंने उसे मसल कर धरती पर फेंक दिया !'

कितना जरठ हूँ मैं ! वह तो कली थी, जिसे अभी खिलने का अधिकार था··!

उसने मुड़कर कुलवंत की ओर देखा। उसकी आँखों में आँसू थे। वह दबे स्वरों में बोला—'कुलवंत! मुझे क्षमा कर दो। तुम अब रोने भी लगी हो यह पता नहीं था। किंतु मुझे रोनेवालों पर बहुत गुस्सा आता है। जिंदगी तो हँसनेवालों के लिए ही होती है, और रोनेवालों के लिए केवल मौत। मौत, जो केवल एक ही दिन आती है' और फिर स्वयं मुस्कराने का यत्न करने लगा··!

नीम की निबौलियाँ

जब कभी मौसी के यहाँ जाना होता, एक दो दिन के बाद वहाँ से भाग आने को जी चाहता । गाँव में मन नहीं लगता था । मौसी का अनुरोध था वर्ष में एक बार जब भी अपने गाँव आऊँ तो एक बार उनके यहाँ भी जरूर पहुँचूँ । उनकी बात टाली नहीं जा सकती थी । उनके दर्शन भी मेरे लिए परमावश्यक थे इसलिए जब भी देश जाता एक दो दिन उनके यहाँ जरूर ठहरता । मौसी की खुशी का कोई ठिकाना न रहता । चाव से वे उस दिन अच्छे अच्छे पकवान बनवाती और मुझे जी भर कर खाने को कहती । गन्नो बहन तो और भी आनन्द विभोर हो उठती । घर का आदमी हो कर भी उनके लिए पहुना बन जाता । और जब कभी मैं रात के समय उन सब के बीच बैठा परिवार की बातें कर रहा होता तो प्रायः सोचता इस नक्षत्र जटित आकाश की छाया में बैठे हम बटोहियों जैसे हैं, सब के रास्ते, सब की मंजिलें अलग अलग हैं । यदि हमें दो घड़ी के लिए मिलजुल कर बैठने का अवसर मिलता है तो यह हमारा सौभाग्य है । इसलिए जब भी मैं वहाँ जाता, वह घर, वह गाँव मुझे नया ही लगता । यद्यपि दो चार दिनों से अधिक मैं वहाँ नहीं ठहरता था लेकिन जाने का मोह नहीं त्याग सकता था ।

पिछली बार जब वहाँ गया था तो गन्नो को देख कर ऐसा लगा था जैसे मैं छोटी गुड्डी को नहीं गाँव की अनजानी क्वाँरी कंचिका को देख रहा हूँ । नजर धोखा खा गई थी । संदेह निवृत्ति के लिए मौसी से पूछा था, "मौसी... यह गुड्डी ही इतनी बड़ी हो हो गयी है न ?"

"हाँ बेटा. .। पहचाना नहीं क्या !" वे बोली थी।

मैंने कहा था—"अब तो शरनो सयानी हो गयी है ।"

"उधर देखो. . . ।" वे एक नीम के पेड़ की ओर संकेत करती हुई बोली थी, पिछली बार जब तुम यहां आए थे तब यह कितना छोटा था और अब देखो. . . .।"

नीम का वह पेड कई हाथ ऊँचा हो गया था । उसमें कई नई शाखायें फूट पडी थीं । हवा के झोंको से उस पेड़ की नन्हीं-नन्ही टहनियाँ झूम रही थी। उसके पत्ते कोई शोर पैदा नहीं कर रहे थे । सो मुझे ऐसा ही लगा जैसे शरनो नीम के पेड़ की तरह ऊँची हो गयी है ।

तभी मौसी ने कहा था— अच्छा हुआ जो तुम आ गये । तुम भी अपनी आँख से पहुना को देख परख लोगे ।" बात समझ में नहीं आई थी इसलिए पूछा था—"कैसा पहुना मौसी ?"

वे बोली थी—"अपने निर्मल सिह के यहाँ उसके ननिहाल में एक लड़का यहाँ आएगा । शरनो के लिए उसे ही देखना है ।"

"इतनी जल्दी !" मेरे मुँह से अचानक ये स्वर फूट पड़े थे।

मौसी हँस दी थी. . . .''अरे पगले क्या जवान लड़कियों को कोई घर मे बैठाए रखता है ! अब तो इसके हाथ पीले करने ही पड़ेंगे ।"

मुझे सुनकर प्रसन्नता हुई थी । और फिर सोचने लगा था, अब फिर जब गाँव आऊँगा तब शरनो शायद इस घर में दिखाई नहीं देगी । यह घर सूना सा लगेगा ।

मौसी के घर ठहरे मुझे दो दिन बीत गए थे। इस बीच पहुना नहीं आया था । तीसरे दिन मौसी स्वयं निर्मल को लेकर उसके

ननिहाल चल दी। जाते समय कहती गयीं थी 'जब तक वापस न लौटूँ, घर का ख्याल रखना'। उस बार कुल मिलाकर आठ दिन गाँव में रहना पड़ गया। पाँचवें दिन कहीं मौसी वापस गाँव लौटी थी। और जब मैं वहाँ से विदा हुआ उनके मुँह से उनके होने वाले जमाई की प्रशंसा सुनता आया था। वह अपने बाप का इकलौता लड़का था। गाँव ही में उन्होंने धान कूटने और आटा पीसने वाली मशीन लगा रखी है। आस-पास के गाँव से उन्हें काफी काम मिल जाता है। घर के सुखी लोग हैं। बाप-बेटा मिलकर काफी कुछ कमा लेते हैं। यह सब कुछ सुनकर खुशी हुई थी।

शरनो बहन के ब्याह की तारीख निकट आई। गाँव से चिट्ठियाँ और निमन्त्रण पत्र आने लगे। दुर्भाग्यवश उन्हीं दिनों पिताजी को टाइफॉयड हो गया। एक महीना अस्पताल में पड़े रहे और इस प्रकार दो महीने और उन्हें पूर्णत. स्वस्थ होने में लगे। शरनो बहन के ब्याह में न मैं जा सका और न घर से कोई दूसरा व्यक्ति। ब्याह नियुक्त तिथि में हो गया। मौसी की उलाहना भरी चिट्ठी आई, घर से कोई तो आ जाता। यदि चार भाई जुट जाते तो बाहर के लोगों के अहसान न सहने पड़ते। बारात इतनी शान से आई थी और उसमें इतने लोग थे कि सम्भालना मुश्किल हो गया था।

इन बातों का समय बीत गया। शरनो का ब्याह हुआ, वह अपने घर चली गई और मौसी की शिकायत अपनी जगह रही। इधर दो वर्ष फिर गाँव जाने का अवसर नहीं मिला। वर्ष-दो-वर्ष में घर में से किसी व्यक्ति को गाँव जाना ही पड़ता था। वह इसलिए कि हम परदेश में बसनेवालों को हमारे अपने ही गाँव वाले कहीं भुला न दें। हम उन्हें यह अहसास दिलाते रहें कि हम जो गाँव में अपने घरों के मालिक हैं, हम जो परदेश रोजी कमाने

चले गये हैं, हम अभी जीवित हैं, मरे नहीं । लो हमें पहचान लो हम फलाँ फलाँ के लड़के हैं । हमारे बाप-दादा इसी धरती पर पैदा हुए थे। उन्होंने इसी धरती पर उपजने वाला अन्न खाया है । इसी धरती के कुओं का पानी पीया है । यह धरती महान् है। यह देश महान् है । लो हमें देखो, हमें पहचान लो ? कल कहीं तुम और तुम्हारी औलाद यह न कहने लगे कि हमारा इस गाँव से कोई नाता नहीं है । इसलिए इस बार गाँव जाना हुआ तो ठीक अढ़ाई वर्ष के बाद । हमेशा की तरह मौसी के यहाँ भी पहुँचा । वे मौसी जो मेरे आने का समाचार सुनते ही निहाल हो उठती थी, इस बार उनमें कोई विशेष उत्सुकता नही देखी । सोचा शायद नाराज होगी । लेकिन रुष्टता की अपेक्षा उनके चेहरे पर परेशानी के भाव अधिक देखे । शरनो ससुराल से मैके आई हुई थी । वह भी उसी रंग मे डूबी हुई थी । घर मे बड़ी जोरों की सफाई की जा रही थी । सारी वस्तुएं खूब बना सँवार कर रखी जा रही थीं । वे काम मे इतनी व्यस्त थी, कि उन्हें और किसी की सुध नही थी । मौसा के मुँह से सुना—"संध्या के समय जमाई आने वाला है । घर की यह सफाई इसीलिये हो रही है !" ओह ! शरनो के पति महाशय आने वाले है...बडी खुशी की बात है..तब तो मैं भी उनसे मिलूँगा, मन में सोचा खूब निभेगी दो ही चार दिन तो यहाँ रहना है, मेरा भी मन लगा रहेगा किन्तु मौसा ने कहा—शाम को आएगा और सवेरे चला जाएगा । उसे काम मे बिल्कुल फुर्सत नही । वह शरनो को लेने आ रहा है ।

सुनकर कुछ निराशा हुई ।

उसी दिन सन्ध्या के समय जब अँधेरा झुक चला था, खेतो पर छाई हुई बूएँ जैसी धुध धीरे-धीरे आँखों से ओझल होने लगी थी और घरों में दीप जल चुके थे । चार साईकिल सवार मौसा के

घर के सामने रुके । मैं समझ गया, जमाई ही आया होगा । लेकिन साईकिल पर....! हाँ ! अब लोग एक गाँव से दूसरे गाँव का सफर प्रायः साईकिलों पर ही कर लेते हैं । घोड़े की सवारी अब करता ही कौन है ! किसमें अब इतना दम-खम है जो चार कोस घोड़े की सवारी कर सके । लेकिन इन चारों में जमाई कौन है, यह पहचानना मेरे लिये मुश्किल था । उनमें से एक व्यक्ति, जिसका रंग साँवला था चेहरे पर चेचक के दाग थे, कद नाटा और शरीर दुबला-पतला, उसने सबसे पहले घर में प्रवेश किया और अपने साथियों के साथ निश्चिन्तता से अंदर जाने लगा। उसके साथी झिझकते हुए आगे बढ़े । मौसा ने उस व्यक्ति को छाती से लगा लिया । मौसी उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरती हुई आशीषें देने लगीं। शरनो एक कोठरी में जा बैठी । मैं चुप खड़ा यह सारी लीला देखता रहा । मुझे यह समझने में देर नहीं लगी कि यह महान् व्यक्ति कौन है. .!

पहुने एक बड़ी चारपाई पर, जिस पर दरी और सफेद चादर बिछी हुई थी, बैठ गए । मौसा और मौसी अलग-अलग उनके सामने पीढ़ियों पर । जमाई से बातें होने लगीं । मैं शरनो के पास चला गया। शरनो माथा झुकाए कुछ सोच रही थी । कोठरी में काफी गरमी थी । मैंने कहा—"इतनी गरमी में क्यों बैठी हो, चलो हवेली की दूसरी ओर बैठें...।"

"नहीं" उसके मुँह से धीरे से निकला ।

"ओ...!" मेरे मुँह से निकला "वे सब तो सामनेवाले आँगन में बैठे हैं....।"

"तो क्या हुआ..मैं यहीं बैठूँगी" वह हल्की सी खीझ के साथ बोली—

"अच्छा तो ठीक है मैं भी तुम्हारे पास यहीं बैठूँगा। सवेरे से तुमने मुझसे एक बार भी ठीक से बात नही की । इतनी जल्दी अपने भैया को भूल गई !" मैंने उलाहना दिया।

"बहनें भी क्या कभी भाईयों को भूलती है ...!" वह धीरे से करुणा भरे शब्दो में बोली "बहनों के मन मे भाईयों का अपार मोह होता है । लो जी भर कर बातें करो । फिर शायद मैं इस प्रकार तुम्हारे पास बैठकर कभी बाते न कर सकूँ ...।'

"पगली ! तू बड़ी भावुक है।" मैं बोला—"ज़रा सी बात करो कि बस रोने लगती हो। पहले तो तुम ऐसी नही थीं । अब तो तुम बात बात पर खीझती हो । मौसी भी शायद इसीलिये परेशान दिखाई देती है । बोलो क्या तुम्हारा यहाँ मन नहीं लगता ?"

"मुझे सभी सताते है, चिढ़ाते है.. मै मुझे कुछ भी अच्छा नही लगता ।" शरनो का गला रुंध गया ।

"क्या मौसी तुमसे नाराज़ है....।" मैंने पूछा। "मुझसे खुश कौन है....।" वह बोली—"सभी तो नाराज़ हैं...।"

"लेकिन मै तो अपनी बहन से नाराज़ नहीं ।" मैंने उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया—"अच्छा यह कहो, तुम मुझे अपने गाँव, अपने घर कब बुलाओगी . .?"

"क्या मेरे घर आओगे भैया....?" किसी उत्सुकता की अपेक्षा, उसके शब्दो मे आश्चर्य भरी स्थिरता थी।—"कब....?" उसने प्रश्न किया।

"जब तुम मुझे बुलाओगी ।" मैंने बड़े प्यार से उत्तर दिया

इतने मे मौसी आ गई । वे मुझसे बोलीं—"जाओ, जाकर पहुनों के पास बैठो ।" और फिर मुँह ही मुँह मे फुसफुसाई, "मुझे यह सब कुछ अच्छा नही लगता...।"

घर के सामने रुके । मैं समझ गया, जमाई ही आया होगा । लेकिन साईकिल पर....! हाँ ! अब लोग एक गाँव से दूसरे गाँव का सफर प्रायः साईकिलों पर ही कर लेते हैं । घोड़े की सवारी अब करता ही कौन है ! किसमें अब इतना दम-खम है जो चार कोस घोड़े की सवारी कर सके । लेकिन इन चारों में जमाई कौन है, यह पहचानना मेरे लिये मुश्किल था । उनमें से एक व्यक्ति, जिसका रंग साँवला था, चेहरे पर चेचक के दाग थे, कद नाटा और शरीर दुबला-पतला, उसने सबसे पहले घर में प्रवेश किया और अपने साथियों के साथ निश्चिन्तता से अंदर जाने लगा। उसके साथी झिझकते हुए आगे बढ़े । मौसा ने उस व्यक्ति को छाती से लगा लिया । मौसी उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरती हुई आशीषें देने लगी। शरनो एक कोठरी में जा बैठी । मैं चुप खड़ा यह सारी लीला देखता रहा । मुझे यह समझने में देर नहीं लगी कि यह महान् व्यक्ति कौन है. .!

पहुने एक बड़ी चारपाई पर, जिस पर दरी और सफेद चादर बिछी हुई थी, बैठ गए । मौसा और मौसी अलग-अलग उनके सामने पीढ़ियों पर । जमाई से बातें होने लगीं । मैं शरनो के पास चला गया। शरनो माथा झुकाए कुछ सोच रही थी । कोठरी में काफी गरमी थी । मैंने कहा—"इतनी गरमी में क्यों बैठी हो, चलो हवेली की दूसरी ओर बैठें...।"

"नहीं" उसके मुँह से धीरे से निकला ।

"ओ...!" मेरे मुँह से निकला "वे सब तो सामनेवाले आँगन में बैठे हैं....।"

"तो क्या हुआ..मैं यहीं बैठूँगी" वह हल्की सी खीझ के साथ बोली–

"अच्छा तो ठीक है मैं भी तुम्हारे पास यहीं बैठूँगा। सबेरे से तुमने मुझसे एक बार भी ठीक से बात नहीं की। इतनी जल्दी अपने भैया को भूल गई !" मैंने उलाहना दिया।

"बहनें भी क्या कभी भाईयों को भूलती हैं ...!" वह धीरे से करुणा भरे शब्दों में बोली "बहनों के मन में भाईयों का अपार मोह होता है। लो जी भर कर बातें करो। फिर शायद मैं इस प्रकार तुम्हारे पास बैठकर कभी बातें न कर सकूँ ...।'

"पगली ! तू बड़ी भावुक है।" मैं बोला—"जरा सी बात करो कि बस रोने लगती हो। पहले तो तुम ऐसी नहीं थी। अब तो तुम बात बात पर खीझती हो। मौसी भी शायद इसीलिये परेशान दिखाई देती हैं। बोलो क्या तुम्हारा यहाँ मन नहीं लगता ?"

"मुझे सभी सताते हैं, चिढाते हैं. .मैं मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।" शरनो का गला रुंध गया।

"क्या मौसी तुमसे नाराज़ है....।" मैंने पूछा। "मुझसे खुश कौन है....।" वह बोली—"सभी तो नाराज़ हैं...।"

"लेकिन मैं तो अपनी बहन से नाराज़ नहीं।" 'मैंने उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया—"अच्छा यह कहो, तुम मुझे अपने गाँव, अपने घर कब बुलाओगी ...?"

"क्या मेरे घर आओगे भैया....?" किसी उत्सुकता की अपेक्षा, उसके शब्दों में आश्चर्य भरी स्थिरता थी।—"कब....?" उसने प्रश्न किया।

"जब तुम मुझे बुलाओगी।" मैंने बड़े प्यार से उत्तर दिया

इतने में मौसी आ गई। वे मुझसे बोलीं—"जाओ, जाकर पहुनों के पास बैठो।" और फिर मुँह ही मुँह में फुसफुसाईं, "मुझे यह सब कुछ अच्छा नहीं लगता...।"

मैंने पूछा—"मौसी क्या....?"

वे शीघ्रता से बोली—"कुछ नहीं, कुछ नहीं।"

मैंने पूछा—"मौसी ये जमाई के साथ और तीन व्यक्ति कौन हैं?

"मैं खुद नहीं जानती..." वे बोली "शायद मित्र होंगे।"

"खूब...।" मेरे मुँह से निकला। और ठीक उसी समय पहुनों के अट्टहास के स्वर मेरे कानों से टकरा गए। मैं फिर बोला—"बड़े जिन्दा दिल हैं सब....।"

मौसी चुप थी। उनके कहने के मुताबिक मैं पहुनों के पास आकर बैठ गया। चुप चाप उनकी बातें सुनता रहा। मुझे उनमें दिलचस्पी मालूम नहीं हो रही थी। और न उन्हें ही मेरी दिलचस्पी का ख्याल था। कुछ देर बाद मैं फिर शरनो के पास आ बैठा। ऐसा मालूम दिया, मेरी अनुपस्थिति में, मौसी उसे कुछ समझा-बुझा रही थी और वह कोई जिद किये जा रही थी। रो रही थी। तब भी वह ओढ़नी के आँचल के छोर से अपनी आँखें पोंछ रही थी।

मैंने पूछा—"तुम रो रही हो...क्यों...?"

शरनो कुछ नहीं बोली—मौसी वहाँ से उठकर जाती हुई बोली—"मैं तो कहती हूँ, हे भगवान तू मुझे ही इस संसार से उठा ले! मैं जो कलपती रहती हूँ, मुझे किस पाप का दंड मिल रहा है...!

एक आघात सा मन में लगा। जैसे कोई अप्रत्याशित बात सुन ली हो।

अचानक वातावरण में एक तीव्र दुर्गन्ध फैल गई। मेरा सिर भन्ना उठा। पहुने हँस-हँस कर बातें कर रहे थे। ऐसा लग रहा

था जैसे वे ...मैंने शरनो से पूछा—'क्या वे कुछ शराब वराब भी पीते हैं ..ऐसे दोस्तों की मंडली मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं !"

वह माथा झुकाए चुपचाप मेरी बातें सुनती रही । मैं बोला—"हमारे घर के लोगों में इन वस्तुओं से कितनी घृणा है । तुम तो जानती ही हो । बेचारे मौसा 'अकाली' हैं ।

तब वह धीरे से बोली—'घर में आए पहुनों की सेवा यदि उनकी इच्छा के अनुसार न हो तो वे रूठ जाते हैं । शिकायत करते हैं । शराब की बोतल तो वे गाँव में अपने साथ ही लेते आए होंगे ।

वहाँ भी क्या इनका यही हाल है...?'

"कैसे बोल सकती हूँ ...।"

आगे मैंने और कुछ नहीं पूछा । और मेरी नजरें आँगन में खड़े नीम के पेड़ पर गड़ गईं, जिस पर शिशिर छाया हुआ था । चाँद की रुपहली चाँदनी में वायु का स्पर्श पा, उसकी टहनियाँ शून्य भाव से धीरे-धीरे डोल रही थीं ।

दूसरे दिन पहुने घर लौट जाने को तैयार हो गए । मौसी ने जमाई को बहुत समझाया, बहुत मनाया, वह एक दो दिन और ठहर जाए और अपने साथियों को वापस लौट जाने दे, पर वह नहीं माना । लाचार शरनो को उसके साथ भेजने के लिए तैयार करना पड़ा । अमर चन्द, गाँव का टाँगे वाला टाँगा ले आया ।

विदाई के समय शरनो बहुत रोई । मौसी और मौसा की आँखों से भी आँसू टपक पड़े । मौसी जमाई से दबे-दबे स्वरों में बोली —'बेटा देखना, शरनो को कोई तकलीफ न हो ..." ।

वह बोला—'कोई फिक्र न कीजिये ।"

घर के सामने रुके । मैं समझ गया, जमाई ही आया होगा । लेकिन साईकिल पर....! हाँ ! अब लोग एक गाँव से दूसरे गाँव का सफर प्राय. साईकिलों पर ही कर लेते हैं । घोड़े की सवारी अब करता ही कौन है ! किसमें अब इतना दम-खम है जो चार कोस घोड़े की सवारी कर सके । लेकिन इन चारो में जमाई कौन है, यह पहचानना मेरे लिये मुश्किल था । उनमें से एक व्यक्ति, जिसका रंग साँवला था, चेहरे पर चेचक के दाग थे, कद नाटा और शरीर दुबला-पतला, उसने सबसे पहले घर मे प्रवेश किया और अपने साथियों के साथ निश्चिन्तता से अंदर जाने लगा । उसके साथी झिझकते हुए आगे बढ़े । मौसा ने उस व्यक्ति को छाती से लगा लिया । मौसी उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरती हुई आशीषें देने लगीं । शरनो एक कोठरी मे जा बैठी । मै चुप खड़ा यह सारी लीला देखता रहा । मुझे यह समझने में देर नही लगी कि यह महान् व्यक्ति कौन है .!

पहुने एक बड़ी चारपाई पर, जिस पर दरी और सफेद चादर बिछी हुई थी, बैठ गए । मौसा और मौसी अलग-अलग उनके सामने पीढ़ियों पर । जमाई से बातें होने लगी । मैं शरनो के पास चला गया। शरनो माथा झुकाए कुछ सोच रही थी । कोठरी में काफी गरमी थी । मैंने कहा—"इतनी गरमी में क्यों बैठी हो, चलो हवेली की दूसरी ओर बैठें...।"

"नहीं" उसके मुँह से धीरे से निकला ।

"औ...!" मेरे मुँह से निकला "वे सब तो सामनेवाले आँगन में बैठे हैं....।"

"तो क्या हुआ..मैं यहीं बैठूँगी" वह हल्की सी खीझ के साथ बोली—

"अच्छा तो ठीक है मैं भी तुम्हारे पास यहीं बैठूँगा। सवेरे से तुमने मुझसे एक बार भी ठीक से बात नहीं की। इतनी जल्दी अपने भैया को भूल गई !" मैंने उलाहना दिया।

"बहनें भी क्या कभी भाईयों को भूलती हैं ...!" वह धीरे से करुणा भरे शब्दों में बोली "बहनों के मन में भाईयों का अपार मोह होता है। लो जी भर कर बातें करो। फिर शायद मैं इस प्रकार तुम्हारे पास बैठकर कभी बातें न कर सकूँ ...।"

"पगली! तू बड़ी भावुक है।" मैं बोला—"ज़रा सी बात करो कि बस रोने लगती हो। पहले तो तुम ऐसी नहीं थीं। अब तो तुम बात बात पर खीझती हो। मौसी भी शायद इसीलिये परेशान दिखाई देती हैं। बोलो क्या तुम्हारा यहाँ मन नहीं लगता ?"

"मुझे सभी सताते हैं, चिढ़ाते हैं... मैं मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।" शरनो का गला रुंध गया।

"क्या मौसी तुमसे नाराज़ हैं....।" मैंने पूछा। "मुझसे खुश कौन है....।" वह बोली—"सभी तो नाराज़ हैं ..।"

"लेकिन मैं तो अपनी बहन से नाराज़ नहीं।" मैंने उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न किया—"अच्छा यह कहो, तुम मुझे अपने गाँव, अपने घर कब बुलाओगी ...?"

"क्या मेरे घर आओगे भैया....?" किसी उत्सुकता की अपेक्षा, उसके शब्दों में आश्चर्य भरी स्थिरता थी।—"कब....?" उसने प्रश्न किया।

"जब तुम मुझे बुलाओगी।" मैंने बड़े प्यार से उत्तर दिया।

इतने में मौसी आ गईं। वे मुझसे बोलीं—"जाओ, जाकर पहुनों के पास बैठो।" और फिर मुँह ही मुँह में फुसफुसाईं, "मुझे यह सब कुछ अच्छा नहीं लगता...।"

मैंने पूछा—'मौसी क्या....?"

वे शीघ्रता से बोली—"कुछ नहीं, कुछ नही ।"

मैंने पूछा—"मौसी ये जमाई के साथ और तीन व्यक्ति कौन है?

"मैं खुद नही जानती..." वे बोली "शायद मित्र होगे।'

"खूब...।" मेरे मुँह से निकला । और ठीक उसी समय पहुनों के अट्टहास के स्वर मेरे कानों से टकरा गए । मैं फिर बोला—"बड़े जिन्दा दिल हैं सब....।"

मौसी चुप थीं । उनके कहने के मुताबिक मैं पहुनों के पास आकर बैठ गया । चुप चाप उनकी बाते सुनता रहा । मुझे उनमे दिलचस्पी मालूम नहीं हो रही थी । और न उन्हे ही मेरी दिलचस्पी का ख्याल था । कुछ देर बाद मैं फिर शरनो के पास आ बैठा । ऐसा मालूम दिया, मेरी अनुपस्थिति में, मौसी उसे कुछ समझा-बुझा रही थीं और वह कोई जिद किये जा रही थी । रो रही थी । तब भी वह ओढ़नी के आँचल के छोर से अपनी आँखे पोंछ रही थी ।

मैंने पूछा—"तुम रो रही हो...क्यों...?"

शरनो कुछ नहीं बोली—मौसी वहाँ से उठकर जाती हुई बोली—"मैं तो कहती हूँ, हे भगवान तू मुझे ही इस संसार से उठा ले! मैं जो कलपती रहती हूँ, मुझे किस पाप का दंड मिल रहा है...!

एक आघात सा मन में लगा । जैसे कोई अप्रत्याशित बात सुन ली हो ।

अचानक वातावरण में एक तीव्र दुर्गन्ध फैल गई । मेरा सिर भन्ना उठा । पहुने हँस-हँस कर बातें कर रहे थे । ऐसा लग रहा

था जैसे वे....मैंने शरनो से पूछा—'क्या वे कुछ शराब वराब तो पीते हैं...ऐसे दोस्तों की सङ्गति मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं!'

वह माथा झुकाए चुपचाप मेरी बातें सुनती रही। मैं बोला—"हमारे घर के लोगों से इन वस्तुओं से कितनी घृणा है। तुम तो जानती ही हो। बेचारे मौसा 'अज्ञानी' हैं।

तब वह धीरे से बोली—"घर में आए पहुनों की सेवा यदि उनकी इच्छा के अनुसार न हो तो वे रूठ जाते हैं। शिकायत करते हैं। शराब की बोतल तो वे गाँव से अपने साथ ही लेते आए होंगे।

वहाँ भी क्या इनका यही हाल है...?"

"कैसे बोल सकती हूँ...!"

आगे मैंने और कुछ नहीं पूछा। और मेरी नजरें आँगन में खड़े नीम के पेड़ पर गड़ गईं, जिस पर शिशिर छाया हुआ था। चाँद की रुपहली चाँदनी में वायु का स्पर्श पा, उसकी टहनियाँ शून्य भाव से धीरे-धीरे डोल रही थीं।

दूसरे दिन पहुने घर लौट जाने को तैयार हो गए। मौसी ने जमाई को बहुत समझाया, बहुत मनाया, वह एक दो दिन और ठहर जाए और अपने साथियों को वापस लौट जाने दे, पर वह नहीं माना। लाचार शरनो को उसके साथ भेजने के लिए तैयार करना पड़ा। अमर चन्द, गाँव का टाँगे वाला टाँगा ले आया।

बिदाई के समय शरनो बहुत रोई। मौसी और मौसा की आँखों में भी आँसू टपक पड़े। मौसी जमाई से दबे-दबे स्वरों में बोली—"बेटा देखना, शरनो को कोई तकलीफ न हो..."।

वह बोला—"कोई फिक्र न कीजिये।"

शरनो जाती हुई मुझसे बोली—"एक बार आओगे न मेरे घर..."

मैंने कहा—"आऊँगा !" न जाने क्यों मेरे मन में एक गहरी उदासी समा गई। मैं उन्हें टाँगे पर दूर तक जाते देखता रहा। यहाँ तक कि टाँगा गन्ने के खेतों की ओट हो गया और सामने केवल उड़ती हुई धूल-सी दिखाई देने लगी।

दो चार दिन वहाँ रह कर मैं मौसी के यहाँ से विदा हुआ। जाने के समय मौसी एक प्रकार से क्षमा याचना करती हुई बोली—"बेटा मन में कुछ और मत सोचना। मैं बहुत सारी उलझनों और परेशानियों में थी, तुम्हारी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया।" किन्तु स्पष्ट होकर वे कुछ नहीं बोलीं। क्या उलझन और परेशानी थी, वे मैं समझकर भी न समझ सका। चिनगारियाँ राख तले दबी रह कर भी आँच दे जाती हैं। सो यही वास्तविकता मौसी की बातों में भी थी। मैं उनके मन की बात और उलझन समझ कर मन ही मन बहुत दुखी था।

एक वर्ष बीत गया। फिर मौसी की ओर से चिट्ठी इत्यादि से शरनो के बारे में कोई समाचार नहीं मिला। अचानक एक दिन, एक टेलीग्राम मिला—मौसा की हालत खराब है। मैं जितनी जल्दी हो सका उनके यहाँ पहुँचा। पता चला, मौसा, जाटों के साथ, एक झड़प में बुरी तरह घायल हो गए हैं। कुछ जाट जबरदस्ती उनकी हवेली के पास भैंसे बाँधने लगे थे। मौसा ने आपत्ति प्रकट की। इस पर झगड़ा हो गया। जाटों ने, मौसा और उनके साथियों को हल्का सा कर खूब पीटा। जब मैं वहाँ पहुँचा तो कचहरी में फौजदारी केस दायर करने की बात चल रही थी। फिर कुछ लोग बीच में पड़कर यह मामला पंचायत में ले गए। जाटों को दंड लगा, और इस प्रकार बात आई गई रही।

एक शाम मौसी के निकट बैठा था। उन्हें बड़ा ही चिन्तित और उदास पाया जैसे वे कोई बहुत बड़ी समस्या सुलझाने में निष्फल हों। पिछले वर्ष शरनो को जैसा देखकर गया था, उसका चित्र मेरे मस्तिष्क में अब भी वैसा ही था। तब भी मौसी को ऐसा ही देखा था। इसलिए मैंने उनसे शरनो के बारे में पूछा, वह कैसी है ?"

"वह बीमार है...।" मौसी बोली, "हमेशा बीमार रहती है। नहीं तो अपने पिता की सुध लेने अवश्य आती।"

मैंने कहा—"हाँ मौसी मैं भी सोच रहा था, शरनो क्यों नहीं आई।"

"ऐसा संदेह होता है, अब वह इस घर में कभी नहीं आएगी।" मौसी के मुँह से दुःख भरे शब्द निकले और उनकी नजरें आँगन के नीम के पेड़ पर पड़ गई। जिसकी पत्तियों को पानी में उबाल कर उस पानी से मौसा के घाव धोए जाते थे।

उनके मुँह से यह निराशापूर्ण बात सुनकर, मेरे मुँह से निकला—"क्यों, शरनो इस घर में क्यों नहीं आएगी मौसी...? उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। शायद मेरे "क्यों" का उनके पास कोई जवाब नहीं था। थोड़ी देर बाद मैंने उन्हें ओढ़नी के आँचल से अपनी आँखों के आँसू पोंछते हुए देखा। मैं उनसे बोला—"मौसी" मैंने शरनो से एक बार उसके यहाँ आने का वायदा किया था। यदि कहो तो मैं उसके यहाँ जाऊँ और सब समाचार ले आऊँ।"

मौसी कुछ चुप रह गई।

उसी दिन रात के समय यह समाचार मिला, शरनो जो बीमार थी, उसकी दशा कुछ ठीक नहीं। दूसरे ही दिन मौसी ने मुझे शरनो के यहाँ भेज दिया। मौसा साथ जाने से मजबूर थे। इसी कारण

मौसी भी न जा सकी । जाने के समय वे मुझसे बोलीं—"बेटा मन घबराता है, जरा जल्दी खबर भेजना । हो सके तो उसे अपने साथ ले आना । हम यहीं उसका इलाज कराएँगे । अच्छी हो जाएगी तो फिर चली जाएगी...।"

मौस्या ने दुखित स्वरों में कहा—"उसके ससुराल वाले उसे नहीं भेजेंगे । उसे यहाँ लाने का ख्याल अपने मन मे निकाल दो शरनो की माँ..."

मौसी ने आँखों के आँसू पोछते हुए कहा—"मैं उसे जबरदस्ती यहाँ लाने के लिये थोड़े ही कहती हूँ" उनका गला भर आया। वे और कुछ न कह सकी ।

पहली बार बहन से मिलने जा रहा था । अपना वचन, और उसका अनुरोध पूरा करने के लिए । बड़े भाई के नाते कई उपहार लेकर ।

जब उसके घर के द्वार पर पहुँचा तो देखा, वहाँ एक अजीब सा समा था । घर वालों के चेहरों पर एक परेशानी थी, क्रोध और घृणा के भाव थे । उनमें से कुछ मौन कभी अन्दर और कभी बाहर आ जा रहे थे । जैसे वे किसी अशुभ घड़ी के टलने की प्रतीक्षा कर रहे हों । मुझसे कोई कुछ नहीं बोला, किसी ने बैठने को भी नही कहा और एक बच्चे द्वारा मैं शरनो के कमरे में पहुँचा दिया गया। देखा, वह एक चारपाई पर रस्सियों से बंधी पड़ी है और आँखें फाड़े छत की ओर देख रही है । मैं द्वार पर ही ठिठक गया । समझ में नहीं आया, बात क्या है । आस-पास देखा, वहाँ कोई नही था । कमरे में प्रवेश करते हुए मैं शरनों की चारपाई के निकट गया मेरे मुँह से निकला "शरनो बहन...।"

और चौंक कर उसने नजरें घुमाईं । उसने मेरी तरफ देखा और फिर तीव्र स्वरों में चीखने लगी, "क्यों आए हो तुम मेरे

पाम.. चले जाओ यहाँ से । मेरे कमरे से फ़ौरन बाहर निकल जाओ । निकल जाओ नहीं तो मैं पुलिस को बुलाऊँगी...। और वह जोर जोर से चीखने लगी । "पुलिस ..पुलिस...पुलिस. .।

मैं उसके इस व्यवहार से परेशान था । कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि मैं उसे क्या कहूँ । बड़ी कठिनाई से मेरे मुँह से निकला, "मैं...मैं तो तुम्हारा भाई हूँ शरनो । देखो मुझे ...मैं मैं .. ."

"निकल जाओ मेरे कमरे से, मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखूँगी । वह उसी तरह चीख कर बोली—"तुम आदमी नहीं पिशाच हो । तुम मुझे जहर दे कर मार देना चाहते हो..तुम...तुम्हारा सारा घर, बच्चे-बूढ़े सभी मेरे दुश्मन हैं...मैं पुलिस को खबर कर दूँगी । तुम लोग मुझे जान से मार डालना चाहते हो ।" वह फिर चिल्लाने लगी, "पुलिस...पुलिस...पुलिस...।"

"शरनो बहन क्या हो गया है तुम्हें ।" परेशानी से मेरे मुँह से निकला और मैं इधर उधर देखने लगा, शायद घर का कोई आदमी दिखाई दे ।

शरनो खिलखिलाकर हँसने लगी—"हाँ ..हाँ मैं पागल हो गई हूँ...मैं पागल हो गई हूँ...इस नरक मे पागल हो गई हूँ । मुझे नंगा करो...मारो...मारो पीटो..मैं पागल हो गई हूँ...हा हा..हा हा ।"

वह भयानक हँसी हँसने लगी । मैं वहाँ और खड़ा न रह सका और कमरे से बाहर निकल आया । वह हँसे जा रही थी । और न जाने क्या कुछ बके जा रही थी ।

सामने से शरनो के वृद्ध श्वसुर आते दिखाई दिये । प्रथम इसके कि मैं उनसे कुछ बोलता, वे स्वयं मुझ से बोले-"देख लिया न हाल हमने तो अपने लड़के का जीवन नष्ट कर दिया ।"

मौसी भी न जा सकी । जाने के समय वे मुझसे बोली—"बेटा मन घबराता है, जरा जल्दी खबर भेजना । हो सके तो उसे अपने साथ ले आना । हम यहीं उसका इलाज कराएँगे । अच्छी हो जाएगी तो फिर चली जाएगी...।"

मौसा ने दुखित स्वरों में कहा—"उसके ससुराल वाले उसे नहीं भेजेंगे । उसे यहाँ लाने का ख्याल अपने मन से निकाल दो शरनो की माँ..."

मौसी ने आँखों के आँसू पोछते हुए कहा—"मैं उसे जबरदस्ती यहाँ लाने के लिये थोड़े ही कहती हूँ" उनका गला भर आया। वे और कुछ न कह सकीं ।

पहली बार बहन से मिलने जा रहा था । अपना वचन, और उनका अनुरोध पूरा करने के लिए । बड़े भाई के नाते कई उपहार लेकर ।

जब उसके घर के द्वार पर पहुँचा तो देखा, वहाँ एक अजीब सा समा था । घर वालों के चेहरों पर एक परेशानी थी, क्रोध और घृणा के भाव थे । उनमें से कुछ मौन कभी अन्दर और कभी बाहर आ जा रहे थे । जैसे वे किसी अशुभ घड़ी के टलने की प्रतीक्षा कर रहे हों । मुझसे कोई कुछ नहीं बोला, किसी ने बैठने को भी नहीं कहा और एक बच्चे द्वारा मैं शरनो के कमरे में पहुँचा दिया गया। देखा, वह एक चारपाई पर रस्सियों से बंधी पड़ी है और आँखें फाडे छत की ओर देख रही है । मैं द्वार पर ही ठिठक गया । समझ में नहीं आया, बात क्या है । आस-पास देखा, वहाँ कोई नहीं था । कमरे में प्रवेश करते हुए मैं शरनों की चारपाई के निकट गया मेरे मुँह से निकला "शरनो बहन...।"

और चौंक कर उसने नजरें घुमाई । उसने मेरी तरफ देखा और फिर तीव्र स्वरों में चीखने लगी, "क्यों आए हो तुम मेरे

पास . चले जाओ यहाँ से । मेरे कमरे से फौरन बाहर निकल जाओ । निकल जाओ नहीं तो मैं पुलिस को बुलाऊँगी. . .।" और वह जोर जोर से चीखने लगी । "पुलिस .पुलिस.. पुलिस. ।

मैं उसके इस व्यवहार से परेशान था । कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि मैं उसे क्या कहूँ । बड़ी कठिनाई से मेरे मुँह से निकला, "मैं...मैं तो तुम्हारा भाई हूँ शरनो । देखो मुझे . मैं मैं.. ..."

"निकल जाओ मेरे कमरे से, मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखूँगी। वह उसी तरह चीख कर बोली—"तुम आदमी नहीं पिशाच हो । तुम मुझे जहर दे कर मार देना चाहते हो. .तुम. . .तुम्हारा सारा घर, बच्चे-बूढ़े सभी मेरे दुश्मन हैं. . .मैं पुलिस को खबर कर दूँगी । तुम लोग मुझे जान से मार डालना चाहते हो ।" वह फिर चिल्लाने लगी, "पुलिस. . .पुलिस. . .पुलिस. . .।"

"शरनो बहन क्या हो गया है तुम्हें ।" परेशानी में मेरे मुँह से निकला और मैं इधर उधर देखने लगा, शायद घर का कोई आदमी दिखाई दे ।

शरनो खिलखिलाकर हँसने लगी—"हाँ . .हाँ मैं पागल हो गई हूँ. . .मैं पागल हो गई हूँ. . .इस नरक में पागल हो गई हूँ । मुझे नंगा करो. . .मारो. . .मारो पीटो. . मैं पागल हो गई हूँ. . .हा हा. . हा हा ।"

वह भयानक हँसी हँसने लगी । मैं वहाँ और खड़ा न रह सका और कमरे से बाहर निकल आया । वह हँसे जा रही थी । और न जाने क्या कुछ बके जा रही थी ।

सामने से शरनो के वृद्ध श्वसुर आते दिखाई दिये । प्रथम इसके कि मैं उनसे कुछ बोलता, वे स्वयं मुझ से बोले-"देख लिया न लाल हमने तो अपने लड़के का जीवन नष्ट कर दिया. . . !"

"पर हुआ क्या है बाबा जी ?" मैंने नम्रतापूर्वक पूछा।

"क्या बताऊँ अब...!" गहरी साँस लेते हुए उन्होंने कुछ अधूरा वाक्य कहा और उनकी नज़रें हवेली की बड़े द्वार की ओर घूम गईं। मैंने देखा, शरनो का पति गेरुआ वस्त्र वाले एक ओझा को अपने साथ लिये चला आ रहा है। ओझा देखने में पहलवान मालूम देता था। उसने कानों में सोने की बालियाँ पहन रखी थीं। गले में ताबीज़ लटक रहे थे। और एक हाथ में उसने चिमटा थाम रखा था। वे सीधे शरनो के कमरे की ओर चले गए। मैं अवाक सब कुछ देखता रहा।

बूढ़े बाबा बोले—"चलो बेटा, हम उधर बाहर कमरे में चलकर बैठें।" मैं उनके पीछे-पीछे चल दिया। दिमाग बहुत परेशान था। कुछ देर बाद फिर मुझे शरनो के चीखने-चिल्लाने की आवाज़ आती सुनाई दे रही थी, जैसे कोई उसका ऑपरेशन कर रहा हो, और वह पीड़ा से तड़प रही हो। वह चीख-चिल्ला रही थी, बक रही थी और ओझा उसे डपट रहा था। गालियाँ दे रहा था। 'ठप..ठप..सड़ाक, ये स्वर भी मेरे कानों में गूँज रहे थे। मैं समझ गया वह शरनों को पीट रहा था।

मेरा कलेजा मुँह को आने लगा "यह क्या हो रहा बाबा..?" मैं बेचैन होकर बोला—"शरनों को क्यों पीटा जा रहा है..?"

बाबा सतोषपूर्वक बोले—"भूत कैसे भागेगा बेटा, ओझा तो पहुँचा हुआ साधू है। तंत्र-मंत्र सभी जानता है। वह पहले भी शरन कौर को कई बार ठीक कर चुका है। भूत मार ही से भागता है।"

"भूत...कैसा भूत ...?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"अब कैसे कहूँ ।" बाबा बोले "बाँझ स्त्री है "

"कैसे भ्रम में हैं आप लोग !" मैं बीच ही में बोल उठा। मैं वहाँ और बैठा भी न रह सका। उठ कर बाहर चला गया। मेरे लिए शरनो की चीत्कार असह्य थी।

आध घंटा के बाद जब मैं वापस लौटा, सीधा शरनो के कमरे में गया। उसके हाथ पाँव के बंधन खुल चुके थे। और वह बिखरी बिखरी सी मूर्छित अवस्था में चारपाई पर पड़ी थी। उसके शरीर पर, जगह जगह चोट के निशान उभरे दिखाई देते थे। उसके सिर के नोचे हुए बाल फर्श पर पड़े थे। बरबस मेरी आँखों में आँसू उमड़ आए।

वह दिन किसी प्रकार मैंने वहाँ बिताया। दिन भर शरनो बेहोश पड़ी रही। रात के समय मैंने उसके ससुराल वालों से उसे घर ले जाने की इच्छा प्रकट की। वे चुप रहे।

मैंने अनुरोध किया—हम गाँव में शरनो का अच्छी तरह इलाज करायेंगे। जब अच्छी हो जाएगी तो आप के यहाँ आकर छोड़ जाएंगे।

वे बोले— "ले जाओ और इलाज कर के देख लो। हम तो सारे उपाय करके हार गये।"

मैं शरनो को घर ले आया। वह बीमार थी। उसे भूख नहीं लगती थी। नींद नहीं आती थी। कुछ दिनों तक इलाज होता रहा और वह अच्छी भली दिखाई देने लगी। मैं बहन को स्वस्थ और हँसता मुस्कुराता देख वहाँ से बिदा हुआ।

मेरे वापस आने के बाद अचानक एक दिन एक चिट्ठी आई। दो चार शब्द उसमें लिखे थे। पढ़ा और जैसे मुझे काठ मार गया। मैं घर के अन्य लोगों को उस समय बता न सका कि शरनो ने कुछ खाकर आत्महत्या कर ली है। मैं स्वयं वह पत्र पूरा न पढ़

"पर हुआ क्या है बाबा जी ?" मैंने नम्रतापूर्वक पूछा।

"क्या बताऊँ अब...!" गहरी साँस लेते हुए उन्होंने कुछ अधूरा वाक्य कहा और उनकी नज़रें हवेली की बड़े द्वार की ओर घूम गई। मैंने देखा, शरनो का पति गेरूआ वस्त्र वाले एक ओझा को अपने साथ लिये चला आ रहा है। ओझा देखने में पहलवान मालूम देता था। उसने कानों में सोने की बालियाँ पहन रखी थी। गले में तावीज़ लटक रहे थे। और एक हाथ में उसने चिमटा थाम रखा था। वे सीधे शरनो के कमरे की ओर चले गए। मैं अवाक सब कुछ देखता रहा।

बूढे बाबा बोले—"चलो बेटा, हम उधर बाहर कमरे में चलकर बैठें।" मैं उनके पीछे-पीछे चल दिया। दिमाग बहुत परेशान था। कुछ देर बाद फिर मुझे शरनो के चीखने-चिल्लाने की आवाज आती सुनाई दे रही थी, जैसे कोई उसका ऑपरेशन कर रहा हो, और वह पीड़ा में तड़प रही हो। वह चीख-चिल्ला रही थी, बक रही थी और ओझा उसे डपट रहा था। गालियाँ दे रहा था। 'ठप, ठप...सड़ाक, ये स्वर भी मेरे कानों में गूंज रहे थे। मैं समझ गया वह शरनो को पीट रहा था।

मेरा कलेजा मुँह को आने लगा "यह क्या हो रहा बाबा..?" मैं बेचैन होकर बोला—"शरनो को क्यों पीटा जा रहा है..?"

बाबा संतोषपूर्वक बोले—"भूत कैसे भागेगा बेटा, ओझा तो पहुँचा हुआ साधू है। तंत्र-मंत्र सभी जानता है। वह पहले भी शरन कौर को कई बार ठीक कर चुका है। भूत मार ही से भागता है।"

"भूत...कैसा भूत ...?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"अब कैसे कहूँ ।" बाबा बोले "बाँझ स्त्री है "

"कैसे भ्रम में है आप लोग !" मैं बीच ही में बोल उठा । मैं वहाँ और बैठा भी न रह सका । उठ कर बाहर चला गया । मेरे लिए शरनो की चीत्कार असह्य थी ।

आध घंटा के बाद जब मैं वापस लौटा, सीधा शरनो के कमरे में गया । उसके हाथ पाँव के बंधन खुल चुके थे । और वह बिखरी बिखरी सी मूर्छित अवस्था में चारपाई पर पड़ी थी । उसके शरीर पर, जगह जगह चोट के निशान उभरे दिखाई देते थे । उसके सिर के नोचे हुए बाल फर्श पर पड़े थे । बरबस मेरी आँखों में आँसू उमड़ आए ।

वह दिन किसी प्रकार मैंने वहाँ बिताया । दिन भर शरनो बेहोश पड़ी रही । रात के समय मैंने उसके ससुराल वालों से उसे घर ले जाने की इच्छा प्रकट की । वे चुप रहे ।

मैंने अनुरोध किया—'हम गाँव में शरनो का अच्छी तरह इलाज करायेंगे । जब अच्छी हो जाएगी तो आप के यहाँ आकर छोड़ जाएंगे ।

वे बोले— "ले जाओ और इलाज कर के देख लो । हम तो सारे उपाय करके हार गये ।"

मै शरनो को घर ले आया । वह बीमार थी । उसे भूख नहीं लगती थी । नीद नही आती थी । कुछ दिनों तक इलाज होता रहा और वह अच्छी भली दिखाई देने लगी । मै बहन को स्वस्थ और हँसता मुस्कुराता देख वहाँ से बिदा हुआ ।

मेरे वापस आने के बाद अचानक एक दिन एक चिट्ठी आई । दो चार शब्द उसमे लिखे थे । पढ़ा और जैसे मुझे काठ मार गया । मै घर के अन्य लोगों को उस समय बता न सका कि शरनो ने कुछ खाकर [illegible] कर ली है मैं स्वय वह पत्र पूरा न पढ़

सका । एक बहन ने पढ़ कर सारे घर वालों को सुनाया, शरनो के ससुराल वाले, उसे वापस ले जाने के लिए आए थे । उसने जाने से इनकार किया । तो मौसा उस पर बहुत बिगड़े थे । और.. ।"

मैंने सोचा यह आषाढ़ का महीना है । मामी की हवेली के आँगन के नीम के पेड़ की निबौलियाँ पक चुकी होंगी । शरनो नीम की निबौलियाँ बड़े चाव से खाया करती थी, अब उन निबौलियों को कौन बटोरता होगा. .?

रेखाएँ—